अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अगस्त २०२०

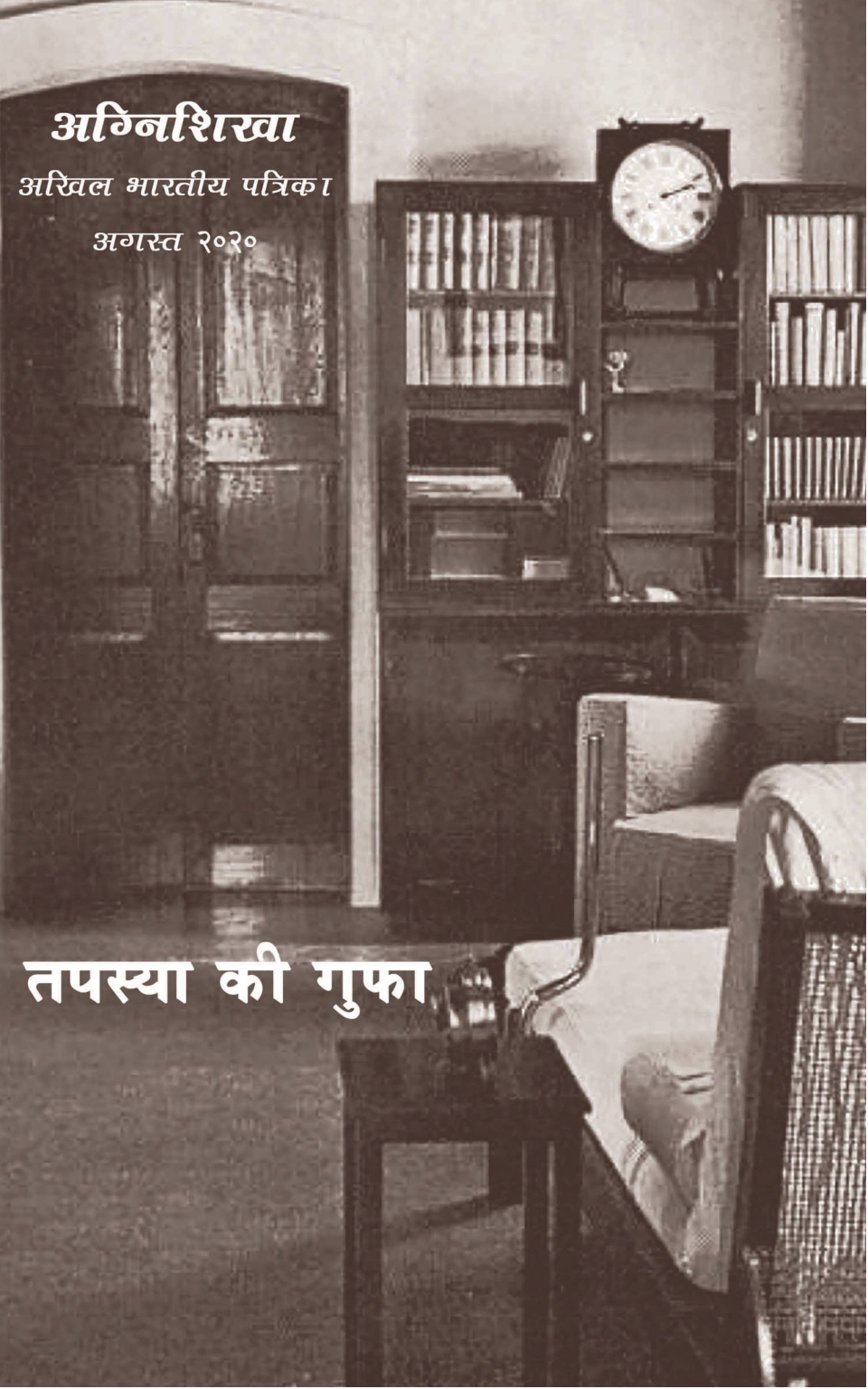

तपस्या की गुफा

अग्निशिखा अगस्त २०२० वर्ष ५१, अंक १, पूर्णांक ६००

विषय-सूची

तपस्या की गुफा

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

प्रार्थना	३
पॉण्डिचेरी	५
श्रीअरविन्द का प्रतीक	९
कुछ रोचक पत्र	१२
श्रीअरविन्द के संस्मरण	२०
श्रीमाँ के संस्मरण	२५
श्रीअरविन्द के योग का कार्यक्रम	२९
योग तथा उसका उद्देश्य	३७

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४३
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : आन्तरिक यात्रा के कुछ चरण	नवजातजी	४७
श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	५१
बिखरे मनके	वन्दना	५६

*एक चीज़ के बारे में तुम निश्चित हो सकते हो—**तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है। तुम वही व्यक्ति बनोगे जो तुम बनना चाहते हो।** तुम्हारा आदर्श और तुम्हारी अभीप्सा जितने ऊँचे होंगे तुम्हारी सिद्धि भी उतनी ही ऊँची होगी। लेकिन तुम्हें दृढ़ निश्चय रखना चाहिये और अपने जीवन के सच्चे लक्ष्य को कभी न भूलना चाहिये।*

२ अप्रैल १९६३ *—श्रीमाँ*

प्रार्थना

५ अगस्त १९१४

हे शाश्वत स्वामी, तू सभी वस्तुओं में प्राणदायक श्वास, मधुर शान्ति, अन्धकार के बादलों को भेदते हुए प्रेम के जाज्वल्यमान सूर्य की तरह है।

वर दे कि पृथ्वी पर, अपने अज्ञान-भरे और दुःखी मानव-बन्धुओं के बीच हम तेरी जीवनदायिनी साँस, तेरी मधुर शान्ति, तेरा जाज्वल्यमान प्रेम हों।

हे दिव्य स्वामी, मेरी पूरी आत्मबलि को एक आहुति के रूप में स्वीकार कर ताकि तेरा कार्य परिपूर्ण हो और समय व्यर्थ में न चला जाये।

एक शान्त आनन्द में मैं अपने-आपको तेरे अर्पण करती हूँ ताकि तू फिर एक बार उसका 'स्वामी' बन जाये जो तेरा है, असंख्य परमाणुओं में से प्रत्येक के अन्दर तथा मेरी समन्वयात्मक चेतना के एकत्व के अन्दर तू स्वयं अपने ऊपर अधिकार प्राप्त करे।

हे दिव्य स्वामी, इस भेंट को स्वीकार कर, इस सम्पूर्ण हवन को स्वीकार कर ताकि इस समय का आना व्यर्थ न हो।

मेरी सारी सत्ता एक जाग्रत् ज्वाला में, शुद्ध प्रेम के यज्ञ की ज्वाला में परिणत हो गयी है।

फिर से एक बार अपने राज्य का राजा बन जा, पृथ्वी को उस भारी बोझ से मुक्त कर जो उसे कुचल रहा है, यह बोझ है उसकी अपनी जड़, अज्ञानमयी और अँधेरी दुर्भावना का।

हे मेरे मधुर स्वामी, मेरी सत्ता प्रेम के यज्ञ की तीव्र ज्वाला से धधक रही है : मेरी भेंट स्वीकार कर ताकि बाधा जीती जा सके।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १२६

पॉण्डिचेरी मेरे एकान्तवास का स्थान है, मेरी तपस्या की गुफा — संन्यासी के समान नहीं, बल्कि मेरे अपने ही आविष्कार के एक प्रकार का एकान्तवास।

CWSA खण्ड ३६, पृ. २५५ **श्रीअरविन्द**

पॉण्डिचेरी

प्रस्थान

फ़रवरी १९१० में गुप्त एकान्तवास के लिए वे (तृतीय पुरुष में श्रीअरविन्द द्वारा लिखित) चन्दननगर चले गये तथा अप्रैल के आरम्भ में फ्रेंच-भारत स्थित पॉण्डिचेरी आ गये। इस समय 'कर्मयोगी' में एक हस्ताक्षरित लेख के लिए उनके विरुद्ध तीसरी बार मुक़द्दमा चलाया गया। उनकी उपस्थिति में समाचार-पत्र के मुद्रक पर दोषारोपण किया गया किन्तु अपील करने पर कलकत्ता के उच्च न्यायालय में इसे रद्द कर दिया गया। उनके विरुद्ध तीसरी बार अभियोग असफल रहा था। श्रीअरविन्द ने अधिक अनुकूल परिस्थितियों में राजनीतिक क्षेत्र में पुनः लौट आने के अभिप्राय से बंगाल छोड़ा था। किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने आध्यात्मिक कार्य की विशालता का अनुभव किया और उन्हें लगा कि इसमें उनकी समस्त शक्ति की एकनिष्ठ एकाग्रता की ज़रूरत होगी। अन्ततोगत्वा उन्होंने राजनीति से सम्पर्क तोड़ लिया, राष्ट्रीय काँग्रेस की अध्यक्षता अनेक बार अस्वीकृत कर दी तथा पूर्ण एकान्तवास में चले गये। पॉण्डिचेरी में १९१० से वर्तमान समय तक अपने सम्पूर्ण आवास की अवधि में वे एकनिष्ठ रूप से अपने आध्यात्मिक कार्य और अपनी साधना के प्रति निवेदित रहे।

आर्य

वर्ष १९१४ में, नीरव योग के चार वर्षों के पश्चात् उन्होंने एक दार्शनिक मासिक पत्रिका, 'आर्य' का प्रकाशन आरम्भ किया। उनकी अधिकांश महत्त्वपूर्ण रचनाएँ, जैसे—ईश-उपनिषद्, गीता-प्रबन्ध, अन्य, जो अभी तक अप्रकाशित हैं, दिव्य जीवन, योग-समन्वय 'आर्य' में क्रमिक रूप से प्रकाशित होती रहीं। इन रचनाओं में उनके योगाभ्यास द्वारा प्राप्त आन्तरिक ज्ञान का अधिकांश मूर्तिमान् हो गया। अन्य रचनाएँ भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की भावना तथा महत्त्व, वेद के वास्तविक अर्थ, मानव समाज की प्रगति, काव्य की प्रकृति तथा क्रमिक विकास, मानवजाति की एकता की सम्भावना से सम्बन्धित थीं। उसी समय उन्होंने अपनी उन कविताओं का भी प्रकाशन आरम्भ कर दिया जो उन्होंने इंग्लैण्ड में, बड़ौदा में, राजनीतिक गतिविधि

की अवधि तथा पॉण्डिचेरी आवास के प्रथम वर्ष में लिखी थीं। वर्ष १९२१ में साढ़े छह वर्ष के निर्बाध प्रकाशन के पश्चात् 'आर्य' बन्द हो गया।

आश्रम

सबसे पहले श्रीअरविन्द पॉण्डिचेरी के एकान्तवास में अपने चार या पाँच शिष्यों के साथ रहते थे। तत्पश्चात् उनके आध्यात्मिक पथ का अनुगमन करने के लिए अधिक लोग उनके पास आने लगे। और उनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी कि उन लोगों के भरण-पोषण तथा सामूहिक मार्गदर्शन के लिए, जो एक उच्चतर जीवन के लिए अपनी हर चीज़ पीछे छोड़ चुके थे—साधकों का एक समुदाय बनाना पड़ा। श्रीअरविन्द आश्रम की स्थापना का यही आधार था जिसके केन्द्र के रूप में उनके चारों ओर निर्माण-कर्म किया गया और स्वाभाविक संवर्धन अधिक हुआ।

नवीन योग

श्रीअरविन्द ने योग का अपना अभ्यास १९०५ में आरम्भ किया। सबसे पहले वे इसमें आध्यात्मिक अनुभूति के मूलभूत तत्त्वों को, जो दिव्य समागम तथा आध्यात्मिक सिद्धि से उपलब्ध होते हैं—भारत में आने तक एकत्र करते रहे। फिर वे एक ऐसी अधिक पूर्ण अनुभूति की ओर आगे बढ़ गये जो सत्ता के दोनों छोरों—आत्मन् और जड़-पदार्थ—को संयुक्त करते हैं। योग की अधिकांश विधियाँ आत्मन् तक मार्गदर्शित करने वाले परे जाने के मार्ग हैं जो अन्त में जीवन से दूर ले जाते हैं। श्रीअरविन्द का योग आत्मन् तक आरोहण करता है और ज्योति, शक्ति तथा आनन्द के साथ उसकी उपलब्धियों को जीवन के रूपान्तरण के लिए नीचे अवरोहित करता है। इस दृष्टिकोण से भौतिक जगत् में मनुष्य का वर्तमान अस्तित्व अज्ञानमय जीवन है जिसके मूल में निश्चेतना का राज्य है। किन्तु इस अन्धकार और निश्चेतना में भी भगवान् की उपस्थिति तथा सम्भावनाएँ अन्तर्निहित हैं। यह सृजित जगत् कोई भूल अथवा निस्सार और माया नहीं है जिसे त्याग कर आत्मा स्वर्ग अथवा निर्वाण की ओर लौट जाये, बल्कि एक आध्यात्मिक क्रमविकास का ऐसा दृश्य है जिसके द्वारा इस भौतिक निश्चेतना में से वस्तुओं में निहित भागवत चेतना को क्रमिक रूप से अभिव्यक्त किया जा

सकता है। क्रमविकास में मन अब तक हमारी पहुँच की अन्तिम सीमा है, परन्तु यह विकास की क्षमता की अन्तिम सीमा नहीं है। इसके ऊपर अतिमानस अथवा शाश्वत सत्य-चेतना है जो अपनी प्रकृति में एक भागवत ज्ञान का आत्म-सचेतन तथा आत्म-निर्धारक प्रकाश तथा शक्ति है। मन सत्य की खोज करने वाला अज्ञान है किन्तु अतिमानस स्वयम्भू ज्ञान है जो अपने रूपों तथा शक्तियों की क्रीड़ा को सामञ्जस्य के साथ अभिव्यक्त कर रहा है। केवल इसी अतिमानस के अवरोहण के द्वारा वह पूर्णता आ सकती है जिसका सबने सपना देखा है और जो मानवता में उच्चतम है। महत्तर दिव्य चेतना के प्रति उद्घाटन द्वारा ज्योति तथा आनन्द की इस शक्ति की ओर ऊपर उठना, अपने सच्चे व्यक्तित्व की खोज करना, भगवान् के साथ सतत संयुक्त रहना तथा मन, प्राण और शरीर के रूपान्तरण के लिए अतिमानसिक शक्ति को नीचे लाना सम्भव है। इस सम्भावना को सिद्ध करना श्रीअरविन्द के योग का गत्यात्मक लक्ष्य रहा है।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ८-१० **श्रीअरविन्द**

मैं देख रहा हूँ कि तुमने मेरी आत्म-कथा लिखने का आग्रह किया है—क्या यह सचमुच आवश्यक या लाभदायक है? यह प्रयास सुनिश्चित रूप से असफल होगा, क्योंकि न तो तुम और न कोई अन्य मेरे जीवन के विषय में कुछ जानता है, क्योंकि यह ऊपरी सतह पर कभी नहीं रहा जिसे मनुष्य देख सके।...

आवश्यक रूप से मैंने केवल प्रमुख तथ्यों का वर्णन किया है और विस्तारों को छोड़ दिया है। जहाँ तक मेरे अपने आकलन का सम्बन्ध है, मैंने कुछ नहीं दिया है। मेरी दृष्टि से मनुष्य का मूल्य उसके ज्ञान या पद या प्रसिद्धि या कार्य पर नहीं बल्कि इस पर निर्भर करता है कि वह क्या है तथा आन्तरिक रूप से वह क्या बन जाता है, और उसके विषय में मैंने कुछ नहीं कहा है।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ११, १२ **श्रीअरविन्द**

मेरा योग अतीत के समस्त योग को ग्रहण करता है और परे चला जाता है।

*

व्यक्ति इसके एक अंश के रूप में किसी भी साधना की अनुभूतियों को अनुभव कर सकता है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ३७९ **श्रीअरविन्द**

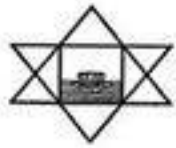

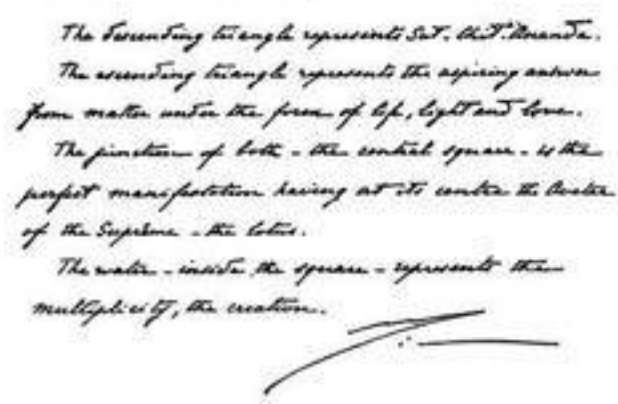

नीचे उतरता हुआ त्रिकोण सत्, चित्, आनन्द का प्रतीक है।
ऊपर उठता हुआ त्रिकोण जीवन, ज्योति और प्रेम के रूप में अभीप्सा करते जड़-द्रव्य के उत्तर का प्रतीक है।
दोनों का संयोजन—बीच का समचतुष्कोण—है पूर्ण अभिव्यक्ति जिसके बीच में परम पुरुष का अवतार—कमल—है।
समचतुष्कोण के अन्दर जल बहुलता का, सृष्टि का प्रतीक है।

*

ऊपर उठता हुआ त्रिकोण सृष्टि की अभीप्सा है; नीचे उतरता हुआ त्रिकोण परमात्मा का प्रत्युत्तर है। और इन दो की सन्धि अभिव्यक्ति का वर्ग बनाती है।

*

लाल कमल श्रीअरविन्द का फूल है, परन्तु धरती पर 'परम' की अभिव्यक्ति को दर्शाने के लिए हम विशेष रूप से, उनकी शताब्दी के लिए नीले कमल को चुन रहे हैं जो उनके भौतिक प्रभामण्डल का रंग है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २९-३०

(माताजी ने लाल कमल को श्रीअरविन्द का फूल और श्वेत कमल को अपना फूल बताया था।)

लाल कमल—धरती पर परम प्रभु की अभिव्यक्ति का प्रतीक।
श्वेत कमल—'भागवत चेतना' का प्रतीक।

हमारा 'प्रेम' शाश्वत 'सत्य' है।

*

उनके बिना, मेरा अस्तित्व नहीं है;
मेरे बिना, वे अनभिव्यक्त हैं।

*

जब तुम अपने हृदय और विचार में मेरे और श्रीअरविन्द के बीच कोई भेद न करोगे, जब अनिवार्य रूप से श्रीअरविन्द के बारे में सोचना मेरे बारे में सोचना हो और मेरे बारे में सोचने का अर्थ हो श्रीअरविन्द के बारे में सोचना, जब एक को देखने का अनिवार्य अर्थ हो दूसरे को उसी एक ही अभिन्न व्यक्ति के रूप में देखना, तब तुम यह जान लोगे कि तुम अतिमानसिक शक्ति और चेतना के प्रति खुलना शुरू कर रहे हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३३

तेरा हृदय परम आश्रय है, जहाँ सभी चिन्ताओं को राहत मिलती है। ओह, इस हृदय को पूरी तरह खुला छोड़ दे ताकि वे सब जो यातनाएँ पा रहे हैं, उसमें परम आश्रय पा लें!...

इस अन्धकार को भेद दे, ताकि प्रकाश चमक उठे;
इस कोलाहल को शान्त कर दे, शान्ति स्थापित कर;
इस उग्रता को अचञ्चल बना दे, तेरे प्रेम का राज्य हो;
योद्धा बन, सभी विघ्न-बाधाओं का विजेता बन;
विजय प्राप्त कर।

—श्रीमाँ

एक नियम के रूप में इस साधना में उपयोग के लिए एकमात्र मन्त्र श्रीमाँ का अथवा मेरा और श्रीमाँ का नाम है। हृदय में एकाग्रता तथा मस्तिष्क में एकाग्रता दोनों का उपयोग किया जा सकता है—प्रत्येक का अपना-अपना परिणाम होता है। प्रथम चैत्य पुरुष को उद्घाटित करता है और भक्ति, प्रेम तथा श्रीमाँ के साथ एकत्व, हृदय में उनकी उपस्थिति तथा प्रकृति में उनकी शक्ति की क्रिया लाता है। दूसरा आत्मसिद्धि की ओर, मन के ऊपर की चेतना की ओर, शरीर के बाहर चेतना के आरोहण की ओर तथा उच्चतर चेतना का शरीर में अवरोहण की ओर मन को उद्घाटित करता है।

CWSA खण्ड २९, पृ. ३२६ श्रीअरविन्द

कुछ रोचक पत्र

विश्व का अन्तर्वासी गुरु

जिससे मैंने आरम्भ किया, लेले ने मुझे जो कुछ दिया, कारावास में जो कुछ किया—वह सब मार्ग का अनुसन्धान था, यहाँ-वहाँ देखते हुए, सभी पुराने आंशिक योगों का स्पर्श, ग्रहण, निर्वाह, इसका तथा उसका परीक्षण, एक कम या अधिक पूर्ण अनुभूति की प्राप्ति और तब दूसरी की खोज में वृत्ताकार चक्कर था। तत्पश्चात् जब मैं पॉण्डिचेरी आया तब यह अस्थिर अवस्था समाप्त हो गयी। विश्व के अन्तर्वासी गुरु ने मुझे पूर्ण रूप से मेरे पथ का, इसके सम्पूर्ण सिद्धान्त, योगांग के दस अवयव का संकेत दे दिया। इन दस वर्षों में वे इसे अनुभूति में मेरे द्वारा विकसित करा रहे हैं। लेकिन यह अभी तक पूरा नहीं हुआ है।...

प्राचीन योगों का अवगुण

प्राचीन योग का अवगुण यह था कि मन और बुद्धि को जान कर तथा आत्मन् का ज्ञान प्राप्त कर, यह मन में आध्यात्मिक अनुभूति से सन्तुष्ट हो गया। परन्तु मन केवल आंशिक को ग्रहण कर सकता है, यह पूर्ण रूप से असीम को, अविभाजित को अधिकृत नहीं कर सकता। इसे अधिकृत करने की मन की विधि है समाधि की आत्म-विस्मृति, मोक्ष की मुक्ति, निर्वाण का विलोप आदि। इसके पास कोई अन्य मार्ग नहीं है।

यत्र-तत्र कोई सचमुच इस निराकार मुक्ति को प्राप्त कर भी ले किन्तु उससे क्या लाभ? परमात्मा, आत्मन्, भगवान् सदा-सर्वत्र रहते हैं। भगवान् चाहते हैं कि मनुष्य उन्हें यहाँ मूर्त रूप दे, व्यष्टि में तथा समष्टि में—जिससे जीवन में भगवान् को सिद्ध किया जा सके। योग की पुरानी विधि आत्मन् तथा जीवन को समन्वित अथवा एकीकृत नहीं कर सकी। इसने विश्व को माया अथवा भगवान् की क्षणभंगुर लीला कह कर समाप्त कर दिया। परिणामतः प्राणिक शक्ति का ह्रास और भारत का पतन हो गया। *गीता* कहती है : *उत्सीदेयुरिमे लोकाः न कुर्याम् कर्म चेदहम्*—"यदि मैं कर्म न करूँ तब ये सब लोग छिन्न-भिन्न हो जायेंगे।" सचमुच भारत के "इन लोगों" का सर्वनाश हो गया है। यह किस प्रकार की आध्यात्मिक पूर्णता

है कि यदि कुछ तपस्वी, संन्यासी, पवित्र आत्माएँ तथा सिद्ध मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लें, यदि कुछेक भक्तजन प्रेमोन्माद में, भागवत मादकता तथा परमानन्द में नाचें-कूदें और सम्पूर्ण जाति निष्प्राण और बुद्धिहीन होकर, अन्धकार तथा जड़ता के गर्त में डूब जाये?

मैंने राजनीति का त्याग क्यों किया?

मैंने राजनीति का त्याग क्यों किया? क्योंकि हम लोगों की राजनीति विशुद्ध भारतीय चीज़ नहीं है; यह यूरोपीय आयात है, यूरोपीय पद्धति की नक़ल है। परन्तु इसकी भी आवश्यकता थी। तुम और मैं भी यूरोपीय शैली की राजनीति में व्यस्त हो गये। यदि हम सब ऐसा नहीं करते, तब देश ऊपर नहीं उठता तथा हम सबको पूर्ण विकास का अनुभव नहीं होता। अभी तक इसकी आवश्यकता है, बंगाल में उतनी नहीं जितनी भारत के अन्य प्रान्तों में। परन्तु अब समय आ गया है जब हमें छाया को विस्तृत करने के बदले सारतत्त्व को अपनाना चाहिये। हमें भारत की सच्ची आत्मा को जगाना है तथा हर चीज़ उसी के अनुकूल करनी है।...

प्रत्येक वस्तु में भगवान्

शरीर को एक शव के रूप में देखना तपश्चर्या का संकेत है, निर्वाण का पथ है। सांसारिक जीवन का इस विचार से मेल नहीं बैठता। हमें प्रत्येक वस्तु में आनन्द देखना होगा—शरीर में भी उतना ही जितना आत्मा में। शरीर चेतना से निर्मित किया गया है, शरीर भगवान् का एक रूप है। मैं संसार की हर चीज़ में भगवान् को देखता हूँ। *सर्वं इदं ब्रह्म वासुदेवो सर्वमिति*—"यह सब यहाँ ब्रह्म है, सब वासुदेव, भगवान् है।" यह दृष्टिकोण विश्वव्यापी आनन्द लाता है। इस परमानन्द की ठोस लहरें शरीर के माध्यम से भी प्रवाहित होती हैं। ऐसी अवस्था में आध्यात्मिक अनुभव से भरपूर होकर व्यक्ति सांसारिक जीवन व्यतीत कर सकता है, विवाह अथवा कोई भी अन्य चीज़ कर सकता है। प्रत्येक गतिविधि में व्यक्ति को भगवान् की आनन्दमय आत्म-अभिव्यक्ति प्राप्त होती है।

उनके लेखों को समझने में कठिनाई—"चिन्तन-भीति"

वही शिकायत 'आर्य' के विषय में भी है; लोग इसे समझ नहीं सकते।

अपने पठन में कौन इतना चिन्तन और सोच-विचार करना चाहता है?... इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें संक्षेप में एक-दो चीज़ें बताना चाहूँगा जिनका मैं बहुत दिनों से निरीक्षण करता आ रहा हूँ। यह मेरा विश्वास है कि भारत की दुर्बलता का मुख्य कारण पराधीनता नहीं है, न ग़रीबी है और न आध्यात्मिकता अथवा धर्म का अभाव है, बल्कि विचार-शक्ति का ह्रास है, ज्ञान के जन्म-स्थान में अज्ञान का प्रसार है। हर जगह मैं सोचने-विचारने की अयोग्यता या चिन्तन करने की उत्सुकता का अभाव—विचार करने की असमर्थता या "चिन्तन भीति" देखता हूँ। यह मध्ययुगीन काल के लिए ठीक हो सकता था, किन्तु अब ऐसी मनोवृत्ति एक महापतन का संकेत है।

हम लोग, जो भी हो, शक्ति के पुजारी नहीं हैं। हम लोग आसान पथ के पुजारी हैं। किन्तु कोई आसान पथ से शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। हमारे पूर्वजों ने विचार के विशाल सागर में सन्तरण किया और बृहद् ज्ञान प्राप्त किया; उन्होंने एक महान् सभ्यता की स्थापना की। किन्तु जैसे-जैसे वे अपने पथ पर आगे बढ़ते गये, थकान और क्लान्ति के शिकार होते गये। उनकी विचार-शक्ति कम हो गयी और इसके साथ ही उनकी सृजनात्मक शक्ति का ह्रास हो गया।

हमारी सभ्यता अप्रवाही जल बन गयी है, हमारा धर्म बाह्याचार का कट्टर मत, हमारी आध्यात्मिकता प्रकाश की एक मन्द झलक अथवा मादकता की क्षणिक तरंग रह गयी है। जब तक यह स्थिति बनी रहेगी, तब तक भारत का कोई भी स्थायी पुनर्जागरण असम्भव है।...

उनके योग का आधार

... मैं अब और भावात्मक उत्तेजना, संवेदन तथा मानसिक उत्साह को आधार नहीं बनाना चाहता। मैं एक विशाल तथा सुदृढ़ समता को अपने योग का आधार बनाना चाहता हूँ। सत्ता की सभी गतिविधियों में, जो उस समता पर आधारित होंगी, मैं एक पूर्ण, सुदृढ़ तथा अकम्पायमान शक्ति चाहता हूँ। उस शक्ति के सागर पर ज्ञान के सूर्य की दीप्ति चाहता हूँ और चाहता हूँ उस प्रदीप्त विशालता में असीम प्रेम, आनन्द तथा एकता का स्थापित हर्षोन्माद। मैं नहीं चाहता कि मेरे हज़ारों हज़ार शिष्य हों। यह पर्याप्त होगा यदि भगवान् के यन्त्र के रूप में तुच्छ अहं से मुक्त एक

सौ पूर्ण मनुष्य मिल जायें। सामान्य कोटि के गुरुवाद में मेरा विश्वास नहीं है। मैं गुरु नहीं बनना चाहता। मैं जो चाहता हूँ वह यह है कि कोई मेरा या किसी अन्य का स्पर्श पाकर अपने अन्दर की सुषुप्त दिव्यता को अभिव्यक्त करे तथा दिव्य जीवन को सिद्ध करे। ऐसे व्यक्ति इस देश को ऊपर उठायेंगे।... *बंगला रचनाओं से*, पृ. ३७२-७३

उनका मिशन (लक्ष्य)

तुम्हें समझना होगा कि मेरा मिशन (लक्ष्य) मठों का, तपस्वियों और संन्यासियों का निर्माण करना नहीं है; बल्कि कृष्ण और काली की लीला के लिए शक्तिशाली आत्माओं को पुनः वापस बुलाना है। यही मेरी शिक्षा है जैसा कि तुम मेरी पत्रिका (आर्य) से अनुमान लगा सकते हो। और मेरा नाम कभी भी मठविषयक आदर्श के साथ युक्त नहीं किया जाना चाहिये। बुद्ध के काल से प्रत्येक त्याग-सम्बन्धी आन्दोलन ने भारत को दुर्बल से दुर्बलतर बनाया है और इसका कारण स्पष्ट है। जीवन का त्याग एक चीज़ है, स्वयं जीवन को ही राष्ट्रीय, व्यष्टिगत, वैश्व जीवन बना देना, महानतर तथा दिव्यतर बना देना एक दूसरी चीज़ है। तुम देश पर एक आदर्श को कमज़ोर बनाये बिना दूसरे आदर्श को आरोपित नहीं कर सकते। तुम जीवन से सर्वोत्तम आत्माओं को लेकर चले जाओ और फिर भी जीवन सशक्त और महान् बना रहे, ऐसा नहीं हो सकता। अहंकार का त्याग, जीवन में भगवान् की स्वीकृति ही मेरा योग है जिसकी मैं शिक्षा देता हूँ—कोई अन्य त्याग नहीं।

दिव्य मानव का निर्माण

मेरा कार्य अब मानव का नहीं, बल्कि दिव्य मानव का निर्माण करना है। मेरी वर्तमान शिक्षा है कि विश्व एक नयी प्रगति की तैयारी कर रहा है, एक नये क्रम-विकास की तैयारी। जो भी जाति या सभ्यता, जो भी देश उस नये क्रम-विकास के मार्ग पर चल पड़ेगा और इसे पूरा कर लेगा, वही मानवता का नेता बन जायेगा। 'आर्य' में मैं उसी विचार को रखता हूँ जिस पर यह नवीन क्रम-विकास आधारित होगा, जैसा कि मैं इसे समझता हूँ, तथा योग की उस विधि का भी जिसके द्वारा इसे पूरा

किया जा सकता है।...

किन्तु यह सन्देश उनके लिए है जो इसे समझना चाहते हैं। वास्तव में इसके तीन भाग हैं :

१. प्रत्येक मनुष्य के लिए व्यक्तिगत रूप से दिव्य मानवता की भावी कोटि में स्वयं को परिवर्तित करना, उस नये सत्ययुग के व्यक्तियों के लिए, जो प्रकट होने के लिए संघर्ष कर रहा है।

२. ऐसे व्यक्तियों की एक प्रजाति का विकास करना जो मानवता का मार्ग-दर्शन करे।

३. इन अग्रधावकों तथा इस चयनित जाति के मार्ग-दर्शन में इस मार्ग पर चलने के लिए समस्त मानवता का आह्वान।

'आर्य' के एक पाठक को पत्र

२१ सितम्बर १९१४

१. ध्यान का ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

ध्यान के भारतीय विचार को व्यक्त करने के लिए अंग्रेज़ी में दो शब्द हैं, "मेडिटेशन" तथा "कॉण्टेम्प्लेशन"। *मेडिटेशन* का उचित अर्थ है, किसी एक विचार-धारा पर मन की एकाग्रता जो केवल एक विषय से सम्बन्धित हो। *कॉण्टेम्प्लेशन* का अर्थ है, मानसिक रूप से एक ही वस्तु, छवि, विचार को समझना जिससे उस वस्तु, छवि या विचार का ज्ञान एकाग्रता की शक्ति से मन में स्वाभाविक रूप से उदित हो जाये। ये दोनों चीज़ें ध्यान के रूप हैं, क्योंकि ध्यान का सिद्धान्त ही है मानसिक एकाग्रता, चाहे वह चिन्तन की हो या अन्तर्दृष्टि की या ज्ञान की। ध्यान के अन्य रूप भी हैं। एक स्थल पर विवेकानन्द तुम्हें अपने विचारों के पीछे खड़े होने की सलाह देते हैं। तुम्हारे मन में जैसे वे आते हैं, उन्हें आने दो। केवल तुम उनका निरीक्षण करो और देखो कि वे क्या हैं। इसे आत्म-निरीक्षण में एकाग्रता कहा जा सकता है।

यह रूप एक अन्य रूप की ओर संकेत करता है, मन से सभी विचारों को बाहर निकाल कर उसे रिक्त कर देना जिससे वह एक प्रकार से शुद्ध, सावधान और कोरा रह जाये जिस पर सामान्य मानव के निम्न विचारों से

अक्षुब्ध तथा श्यामपट पर सफ़ेद खड़िया द्वारा स्पष्ट लेखन के साथ दिव्य ज्ञान आकर अपनी छाप छोड़ सके। तुम पाओगे कि *गीता* योग की एक विधि के रूप में समस्त मानसिक विचारों की इस अस्वीकृति के बारे में बताती है तथा यह विधि अधिक स्वीकार करने-योग्य प्रतीत होती है। इसे मुक्ति का ध्यान कहा जा सकता है क्योंकि यह ध्यान मन को सोचने की यान्त्रिक प्रक्रिया की दासता से मुक्त कर देता है तथा उसे इस बात की स्वतन्त्रता दे देता है कि वह सोचे या न सोचे या कब सोचे या सोचने के लिए अपने विचारों का स्वयं चयन करे या विचार से परे सत्य के उस शुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञान में चला जाये जिसे हमारे दर्शन-शास्त्र में विज्ञान कहा जाता है।

मेडिटेशन मानव मन के लिए सरलतम प्रक्रिया है, किन्तु अपने परिणाम में संकीर्णतम। *कॉण्टेम्प्लेशन* अधिक कठिन है, किन्तु महत्तर है। आत्म-निरीक्षण तथा विचार-शृंखला से मुक्ति कठिनतम है, किन्तु अपने परिणाम में विशालतम तथा महानतम है। व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति तथा क्षमता के अनुसार इनमें से किसी को चुन सकता है। पूर्ण विधि है, उनमें से प्रत्येक का अपने-अपने स्थान में तथा अपने-अपने उद्देश्य के लिए उपयोग करना। परन्तु इसके लिए योग के आत्म-प्रयोग में एक अटल श्रद्धा, दृढ़ धैर्य तथा बहुत बड़ी संकल्प-शक्ति की आवश्यकता होगी।

२. ध्यान के लिए किस प्रकार का विषय या विचार होना चाहिये?

जो भी तुम्हारी प्रकृति के सर्वाधिक अनुरूप तथा उच्चतम अभीप्सा हो। परन्तु यदि तुम इसका पूर्ण उत्तर जानना चाहते हो तब मुझे कहना होगा कि ब्रह्म हमेशा ध्यान तथा गहन चिन्तन के लिए सर्वोत्तम विषय होता है तथा जिस विचार पर मन को स्थिर करना चाहिये वह है, सबमें भगवान्, सब भगवान् में तथा भगवान् के रूप में सब। तात्त्विक रूप से इस बात का महत्त्व नहीं है कि ये निर्वैयक्तिक भगवान् हैं या वैयक्तिक अथवा आत्मपरक रूप से एकमात्र आत्मन् हैं। परन्तु इस विचार को मैंने सर्वश्रेष्ठ पाया है, क्योंकि यह उच्चतम है तथा सभी अन्य सत्यों को समाविष्ट करता है, चाहे वे इस लोक के सत्य हों अथवा अन्य लोकों के या समस्त गोचर सृष्टि के परे के सत्य—*"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"*। 'आर्य' के तीसरे अंक में, *ईशोपनिषद्* के विश्लेषण की दूसरी क़िस्त के अन्त में, तुम ब्रह्म की इस

अन्तर्दृष्टि का वर्णन देखोगे जिससे हो सकता है कि इस विचार को समझने में तुम्हें मदद मिले।

३. ध्यान के लिए सर्वथा अनिवार्य आन्तरिक तथा बाहरी अवस्थाएँ।

कोई अनिवार्य बाहरी अवस्थाएँ नहीं हैं, किन्तु ध्यान के समय एकान्त तथा शरीर की स्थिरता सहायक होती है तथा कभी-कभी नौसिखिये के लिए प्रायः आवश्यक होती है। किन्तु व्यक्ति को बाहरी परिस्थितियों से बँधना नहीं चाहिये। एक बार जब ध्यान की आदत बन जाये तब सभी परिस्थितियों में इसे कर पाना सम्भव बनाया जाना चाहिये—लेट कर, बैठ कर, टहलते हुए, अकेले, किसी की संगति में, नीरवता में अथवा शोर के बीच आदि।

पहली आन्तरिक स्थिति जो आवश्यक है वह है, ध्यान की बाधाओं, यानी मन की मटरग़श्ती, विस्मृति, निद्रा, शारीरिक तथा स्नायविक अधीरता तथा बेचैनी आदि के विरुद्ध संकल्प की एकाग्रता।

दूसरी है, आन्तरिक चेतना (चित्त) की वर्धनशील शुद्धता तथा अचञ्चलता जहाँ से विचार तथा भावना उठती है, यानी सभी क्षुब्धकारी प्रतिक्रियाओं से मुक्ति; जैसे, क्रोध, शोक, विषाद, सांसारिक घटनाओं के बारे में चिन्ता इत्यादि। मानसिक पूर्णता तथा आचार हमेशा एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होते हैं।

CWSA *खण्ड ३६, पृ. २९३-९५* **श्रीअरविन्द**

मेरा ज़ुकाम चलता चला जा रहा है। इस असामञ्जस्य के लिए कुछ करना होगा।

बीमारियों से पिण्ड छुड़ाने का अचूक तरीक़ा यह है कि तुम उनसे अपना ध्यान खींच लो और उन्हें किसी भी तरह का महत्त्व देने से इन्कार कर दो।
१६ अप्रैल १९३५

—श्रीमाँ

योग की प्रथम प्रक्रिया है, आत्म-समर्पण का संकल्प करना। अपने-आपको अपने समस्त हृदय तथा अपनी सारी शक्ति के साथ भगवान् के हाथों में सौंप दो। कोई शर्त न रखो, किसी चीज़ की माँग न करो, योग में सिद्धि की भी माँग न करो, किसी चीज़ की भी नहीं, सिवाय इसके कि तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे माध्यम से भगवान् का संकल्प प्रत्यक्ष रूप से क्रियान्वित हो सके। जो उनसे माँग करते हैं, भगवान् उनकी माँग पूरी करते हैं, किन्तु उन्हें, जो अपना सर्वस्व दे देते हैं और कुछ माँग नहीं करते वे, वह प्रत्येक चीज़ जो माँग सकते थे अथवा जिसकी उन्हें ज़रूरत हो सकती थी, उन्हें दे देते हैं। इसके अतिरिक्त, वे उन्हें स्वयं को तथा अपने प्रेम के स्वाभाविक वरदान भी दे देते हैं।

CWSA खण्ड १३, पृ. ७४ श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द के संस्मरण

राजनीति का त्याग

पॉण्डिचेरी आने के बाद से श्रीअरविन्द का योगाभ्यास अधिक-से-अधिक तल्लीनकारी होता चला गया। उन्होंने किसी भी सार्वजनिक राजनीतिक गतिविधि में भाग लेना बन्द कर दिया। उन्होंने अनेक बार पुनर्गठित भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के सत्रों की अध्यक्षता करने का अनुरोध ठुकरा दिया। उन्होंने यह नियम बना लिया कि अब वे किसी प्रकार का ऐसा सार्वजनिक वक्तव्य अथवा कोई लेख नहीं देंगे जो उनकी आध्यात्मिक गतिविधियों से सम्बन्धित न हो। बाद में उन्होंने जो 'आर्य' में लिखा वह अपवाद था। कुछ वर्षों के लिए उन्होंने उस क्रान्तिकारी दल के एक-दो व्यक्तियों के साथ निजी सम्बन्ध बनाये रखा जिसका उन्होंने नेतृत्व किया था, किन्तु कुछ समय के बाद इसे भी उन्होंने बन्द कर दिया और अब राजनीति में किसी भी प्रकार की उनकी सहभागिता नहीं रही। जैसे-जैसे भविष्य के प्रति उनकी दृष्टि स्पष्ट होती गयी, उन्होंने देखा कि भारत की स्वाधीनता अवश्यम्भावी है और समय के प्रयाण के साथ यह अवश्य आयेगी। भारतीय प्रतिरोध तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के दबाव से ब्रिटेन स्वाधीनता देने के लिए बाध्य हो जायेगा और भारत उस सम्भावना की ओर विरोध और अनिच्छा के बावजूद पहले से ही बढ़ रहा है। उन्होंने अनुभव किया कि सैनिक विप्लव की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और इसके लिए राष्ट्रीय हित को बिना कोई हानि पहुँचाये गुप्त तैयारी को स्थगित किया जा सकता है, यद्यपि क्रान्ति की भावना को बनाये रखना होगा और इसे अक्षुण्ण बनाये रखा जायेगा। उनका राजनीति में अपना व्यक्तिगत हस्तक्षेप इसलिए अब अनिवार्य नहीं रहेगा। इसके अतिरिक्त, उनके समक्ष निर्धारित आध्यात्मिक कार्य का विस्तार अधिकाधिक स्पष्ट होने लगा और उन्होंने देखा कि इस पर उनकी सारी ऊर्जाओं का संकेन्द्रण आवश्यक है। तदनुसार, जब आश्रम अस्तित्व में आया तब उन्होंने इसे सभी राजनीतिक सम्पर्कों या क्रियाओं से मुक्त रखा। जब उन्होंने बाद में विशेष अवसरों पर दो बार राजनीति में हस्तक्षेप भी किया तब यह हस्तक्षेप पूर्णतः व्यक्तिगत था और आश्रम इसमें सम्बद्ध नहीं था।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था—जैसा कि कुछ लोगों ने अनुमान किया —

कि वे आध्यात्मिक अनुभूति की कुछ ऊँचाई में निवृत्त हो गये हैं और अब विश्व में या भारत की नियति में उनकी रुचि नहीं रही। ऐसा उनका तात्पर्य कभी नहीं हो सकता था, क्योंकि उनके योग का सिद्धान्त ही है—केवल भगवान् तथा पूर्ण आध्यात्मिक चेतना की सिद्धि नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवन तथा विश्व की गतिविधि को भी इस आध्यात्मिक चेतना तथा क्रिया के क्षेत्र में समाविष्ट करना तथा आत्मन् को जीवन का आधार बनाना तथा इसे एक आध्यात्मिक अर्थ प्रदान करना। अपनी निवृत्ति की अवधि में भी श्रीअरविन्द विश्व की और भारत की सभी घटनाओं पर गहरी निगरानी रखते थे तथा जब भी आवश्यक हुआ, सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करते थे, परन्तु केवल आध्यात्मिक शक्ति तथा नीरव आध्यात्मिक क्रिया के साथ।...

सार्वजनिक हस्तक्षेप

प्रथम हस्तक्षेप दूसरे महायुद्ध से सम्बन्धित था। आरम्भ में उन्होंने इसमें सक्रिय रुचि नहीं ली, किन्तु जब उन्हें लगा कि हिटलर उसका विरोध करने वाली सभी शक्तियों को रौंद देगा तथा नाज़ीवाद विश्व पर छा जायेगा, तब उन्होंने हस्तक्षेप करना आरम्भ किया। उन्होंने सार्वजनिक रूप से मित्र-राष्ट्रों का पक्ष लेने की घोषणा की, कोष के लिए अपील के उत्तर में कुछ वित्तीय योगदान किया तथा उन्हें उत्साहित किया जो सेना में प्रवेश के लिए या युद्ध के प्रयास में सहयोग देने के लिए उनकी सलाह माँगते थे। आन्तरिक रूप से उन्होंने डंकर्क के पतन के समय से—जब प्रत्येक व्यक्ति यह आशा करने लगा कि इंग्लैण्ड की हार शीघ्र होने वाली है और हिटलर की विजय सुनिश्चित है—मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में अपने आध्यात्मिक बल का प्रयोग किया और उन्होंने यह देख कर सन्तोष की साँस ली कि जर्मनी की विजय की गति रुक गयी है तथा युद्ध का ज्वार विपरीत दिशा में पलटने लगा है। यह उन्होंने इसलिए किया क्योंकि उन्होंने हिटलर तथा नाज़ीवाद के पीछे अन्धकार की आसुरिक शक्तियों को देखा तथा यह अनुभव किया कि उनकी सफलता का अर्थ होगा, अशुभ की तानाशाही की सम्पूर्ण मानव के लिए दासता तथा क्रम-विकास में बाधा, विशेषकर मानव के आध्यात्मिक क्रम-विकास में रुकावट। इससे न केवल यूरोप ग़ुलाम हो जाता बल्कि एशिया और एशिया के अन्तर्गत भारत भी। वह ग़ुलामी इतनी भयानक होती जैसी

इस देश ने कभी सहन नहीं की होगी और तब स्वाधीनता के लिए किये गये सारे कार्य व्यर्थ हो जाते। इसी कारण से प्रेरित होकर उन्होंने क्रिप्स-प्रस्ताव का भी सार्वजनिक रूप से समर्थन किया तथा काँग्रेस पर इसे स्वीकारने के लिए दबाव डाला... उन्होंने क्रिप्स-प्रस्ताव का समर्थन इसलिए किया क्योंकि इसकी स्वीकृति द्वारा भारत तथा ब्रिटेन आसुरिक शक्तियों के विरुद्ध एकजुट होकर खड़े हो सकें तथा क्रिप्स के समाधान को स्वाधीनता की दिशा में आगे बढ़े एक क़दम के रूप में प्रयुक्त किया जा सके।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ६४-६६ **श्रीअरविन्द**

चार महान् सिद्धियाँ

श्रीअरविन्द ने चार महान् सिद्धियों में से उन दो को पूर्ण रूप से पहले ही सिद्ध कर लिया था जिन पर उनका योग और उनका आध्यात्मिक दर्शन आधारित हैं। पहली सिद्धि उन्होंने तब प्राप्त कर ली थी जब वे जनवरी १९०८ में बड़ौदा में मराठी योगी विष्णु भास्कर लेले के साथ ध्यान कर रहे थे। यह नीरव, दिक्काल से परे ब्रह्म की सिद्धि थी जो सम्पूर्ण चेतना की एक पूर्ण तथा चिरस्थायी स्थिरता के बाद प्राप्त होती है। इसका पहला परिणाम यह हुआ कि उन्हें विश्व की सम्पूर्ण अवास्तविकता की अभिभूत कर देने वाली अनुभूति और बोध होने लगा। यह अनुभूति दूसरी सिद्धि के बाद ग़ायब हो गयी जो वैश्व चेतना तथा *सर्वं खल्विदं ब्रह्म* की सिद्धि थी। यह सिद्धि उन्हें अलीपुर जेल में प्राप्त हुई जिसकी चर्चा उन्होंने अपने उत्तरपाड़ा भाषण में की है। जहाँ तक अन्य दो सिद्धियों—निश्चल तथा गत्यात्मक ब्रह्म के दो पक्षों के साथ परम सत्य तथा चेतना के उच्चतर लोकों से होते हुए अतिमानस की ओर गमन—का सम्बन्ध है, वे अलीपुर जेल में ही ध्यानावस्था में उस मार्ग पर चल पड़े थे।

अपने योग के विषय में एक टिप्पणी

जब तक मैं पॉण्डिचेरी नहीं आया था, मैंने किसी को शिष्य नहीं बनाया। जो मेरे साथ आये थे या जो पॉण्डिचेरी में मेरे साथ रहने आ गये थे, उनके साथ पहले मेरा मित्रों तथा साथियों के समान सम्बन्ध था, गुरु-शिष्य के समान नहीं। राजनीति के आधार पर ही मैं उन्हें जानता

था, आध्यात्मिक आधार पर नहीं। बाद में ही आध्यात्मिक सम्बन्धों का क्रमिक विकास हुआ। तभी श्रीमाँ जापान से वापस आ गयीं और १९२६ में आश्रम की स्थापना की गयी, बल्कि यह कहें कि आश्रम स्वयं स्थापित हो गया। मैंने १९०४ में योग करना आरम्भ किया—बिना गुरु के। मैंने १९०८ में एक मराठी योगी से महत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त की तथा अपनी साधना के आधार की खोज की। किन्तु उस समय से लेकर श्रीमाँ के भारत-आगमन तक मुझे किसी अन्य से आध्यात्मिक सहायता नहीं प्राप्त हुई। मेरी साधना पहले और बाद में भी पुस्तकों पर आधारित नहीं थी बल्कि व्यक्तिगत अनुभूतियों पर थी, जो मेरे अन्दर से उमड़ पड़ी थीं परन्तु जेल में मेरे पास गीता तथा उपनिषद् थे। मैंने गीता के योग का अभ्यास किया तथा उपनिषदों की सहायता से ध्यान किया। केवल इन्हीं पुस्तकों से मैंने मार्गदर्शन लिया। वेदों ने, बहुत बाद में पॉण्डिचेरी में मैंने उन्हें पढ़ना आरम्भ किया था, उन अनुभूतियों को पुष्ट कर दिया जो पहले हुई थीं। वेदों ने मेरी साधना का मार्गदर्शन नहीं किया।

एकाग्रता तथा कृपा

... प्रसंगवश, किसी भी सिद्धि को प्राप्त करने से पहले, बहुत वर्षों तक प्रतिदिन मेरी चार-पाँच घण्टों की एकाग्रता के बारे में कहानी भला क्या है? ऐसी चीज़ कभी घटित नहीं हुई—यदि एकाग्रता से तुम्हारा तात्पर्य श्रमसाध्य ध्यान है। मैंने जो किया वह था, प्रतिदिन चार या पाँच घण्टों तक प्राणायाम, जो एक दूसरी ही बात है। और तुम किस धाराप्रवाह की बात कर रहे हो? कविता का प्रवाह तब आया जब मैं प्राणायाम कर रहा था, न कि कुछ वर्षों के बाद। यदि तुम अनुभूतियों के प्रवाह की बात कर रहे हो तब वह कुछ वर्षों के बाद आया, जब मैंने बहुत दिनों तक प्राणायाम बन्द कर दिया था और कुछ नहीं कर रहा था तथा मैं नहीं जानता था कि क्या करूँ अथवा अपने सारे प्रयासों की विफलता के बाद किधर जाऊँ। और यह आया वर्षों के प्राणायाम अथवा एकाग्रता के परिणाम-स्वरूप नहीं, बल्कि हास्यास्पद रूप से, बड़ी आसानी से, या तो अल्पकालिक गुरु की (किन्तु ऐसा नहीं था, क्योंकि वे स्वयं यह देख कर चकित थे) अथवा सनातन ब्रह्म की तथा बाद में महाकाली और कृष्ण की कृपा से। अतः,

भगवान् के विरुद्ध विवाद में मुझे मत उलझाओ। वह प्रयास पूरी तरह निष्फल हो जायेगा।

CWSA खण्ड ३५, पृ. २३७ **श्रीअरविन्द**

आश्रम की रूप-रेखा

पहले कोई आश्रम न था, कुछ लोग श्रीअरविन्द के पास रहने आये और योगाभ्यास करने लगे। वह तो जब श्रीमाँ जापान से वापस आयीं उसके कुछ समय बाद आश्रम ने रूप लेना शुरू किया, अधिक तो यह उन साधकों की इच्छा के कारण शुरू हुआ जिन्होंने अपना समस्त आन्तरिक और बाह्य जीवन श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द के चरणों में समर्पित करने का संकल्प कर लिया था।...

फ़्रांस और जापान में बहुत समय रहने के बाद माँ २४ अप्रैल १९२० को पॉण्डिचेरी लौट आयीं। उस समय तेज़ी से शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। जब आश्रम का इस तरह विकास होने लगा तो माँ के ऊपर उसके कार्य-भार, उसकी व्यवस्था का ज़िम्मा आ गया; शीघ्र ही श्रीअरविन्द एकान्त में चले गये और आश्रम का समस्त भौतिक और आध्यात्मिक विकास श्रीमाँ की देख-रेख में होने लगा।

CWSA खण्ड ३६, पृ. १०३ **श्रीअरविन्द**

श्रीअरविन्द ने कभी सपने में भी संन्यास लेने या संन्यासियों के किसी भी सम्प्रदाय में प्रवेश करने की बात नहीं सोची थी। यह बात हर एक को अच्छी तरह मालूम होनी चाहिये कि संन्यास उनके योग का हिस्सा कभी नहीं था; उन्होंने पॉण्डिचेरी में आश्रम की स्थापना की, लेकिन उसके सदस्य संन्यासी नहीं हैं, वे गेरुआ वस्त्र नहीं पहनते या पूरी तरह से संन्यासियों का जीवन नहीं जीते, बल्कि वे आध्यात्मिक उपलब्धि की नींव पर टिके जीवन के योग का अनुसरण करने वाले साधक हैं।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ९४ **श्रीअरविन्द**

श्रीमाँ के संस्मरण

श्रीअरविन्द का वातावरण

लोग कहते हैं, "जब अतिमानसिक शक्ति अभिव्यक्त होगी तो हम ख़ूब अच्छी तरह उसे जान जायेंगे। वह दिखायी देगी"—ऐसा ही होगा यह आवश्यक नहीं है। वे उन लोगों से ज़रा भी अधिक अनुभव नहीं करेंगे जिनकी संवेदनशीलता कम है और जो इस स्थान से गुज़र जाते हैं, यहाँ तक कि यहाँ रहते हैं और यह अनुभव नहीं करते कि यहाँ का वातावरण अन्य स्थानों से भिन्न है—भला तुम लोगों में से कौन उसे इतने यथार्थ रूप में अनुभव करता है कि उसे दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर सके?... तुम अपने हृदय में, अपने विचार के अन्दर अनुभव कर सकते हो कि यह ठीक वैसा ही नहीं है, पर यह काफी अस्पष्ट होता है, है न? परन्तु इसे ठीक-ठीक अनुभव करना...। सुनो, जैसा कि मैंने किया था जब मैं जापान से आयी थी: मैं जहाज़ पर, समुद्र में थी, किसी चीज़ की आशा नहीं कर रही थी (अवश्य ही मैं अपने आन्तरिक जीवन में व्यस्त थी, पर मैं भौतिक रूप से जहाज़ पर विद्यमान थी), तब एकाएक, अकस्मात्, पॉण्डिचेरी से लगभग दो सामुद्रिक मील की दूरी पर, वातावरण के, वायु के प्रकार में, मैं यहाँ तक कह सकती हूँ कि उसके भौतिक प्रकार में इतना अधिक परिवर्तन हो गया कि मैं जान गयी कि हम श्रीअरविन्द के ज्योति-मण्डल में प्रवेश कर रहे हैं। यह एकदम भौतिक अनुभव था और मैं विश्वास दिलाती हूँ कि जिस किसी व्यक्ति में पर्याप्त जाग्रत् चेतना है वह इस चीज़ को अनुभव कर सकता है।

मुझे इससे विपरीत अनुभव भी प्राप्त हुआ था, जब कि मैं यहाँ बहुत वर्षों तक रहने के बाद पहली बार कार से बाहर घूमने निकली थी। जब मैं "झील" के उस ओर कुछ ही दूर पहुँची कि मैंने अकस्मात् यह अनुभव किया कि वातावरण बदल रहा है; जहाँ कि पहले समृद्धि, शक्ति, ज्योति और स्फूर्ति अनुभूत हो रही थी, अब वह सब कम होती जा रही थी, घटती जा रही थी... और फिर... कुछ नहीं रहा। मैं मानसिक या प्राणिक चेतना में नहीं थी, मैं एकदम भौतिक चेतना में थी। हाँ, जो लोग अपनी भौतिक चेतना में संवेदनशील होते हैं उन्हें बिलकुल ठोस रूप में उसे

अनुभव करना चाहिये। और मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि जिस क्षेत्र को हम लोग "आश्रम" कहते हैं उसमें शक्ति का जैसा घनीभूत रूप है वैसा ही शहर के दायरे में बिलकुल भी नहीं है और देहाती क्षेत्र के दायरे में तो और भी कम है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २६६-६७

'उनके शब्द' की शक्ति

... मैं पॉण्डिचेरी में श्रीअरविन्द से पहले-पहल मिली थी। मैं गहरे ध्यान में थी, अतिमानस में वस्तुओं का स्वरूप देख रही थी, उन वस्तुओं का जो भविष्य में जन्म लेने वाली थीं पर जो किसी कारण प्रकट नहीं हो रही थीं। जो कुछ मैंने देखा था वह श्रीअरविन्द को बताया और उनसे पूछा कि क्या ये चीज़ें प्रकट होंगी। उन्होंने उत्तर में केवल "हाँ" कहा। उसी क्षण मैंने देखा कि अतिमानस ने पृथ्वी का स्पर्श किया और चरितार्थ होना शुरू हो गया! यह पहला अवसर था जब मैंने सत्य को वास्तविक रूप देने की शक्ति अपनी आँखों से देखी: ठीक यही शक्ति तुम्हें सत्य की उपलब्धि करायेगी जब तुम पूरी सच्चाई के साथ इसकी शरण में आओगे, यह कहते हुए: "इस असत्य से मैं मुक्त होना चाहता हूँ," और तुम्हें इसका उत्तर मिलेगा—"हाँ।"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १५६

ठोस शान्ति

तुम्हें वह तूफ़ानी रात याद है जब बहुत ज़ोर की गड़गड़ाहट हुई थी और चारों ओर वर्षा की झड़ी लगी थी। मैंने सोचा, मैं श्रीअरविन्द के कमरे में जाकर खिड़कियाँ बन्द करने में उनकी मदद करूँ। मैंने उनका दरवाज़ा खोला तो देखा वे अपनी मेज़ के पास बैठे चुपचाप लिख रहे हैं। कमरे में ऐसी ठोस शान्ति थी कि कोई कल्पना भी न कर सकता था कि बाहर इतने ज़ोर का तूफ़ान चल रहा है। सभी खिड़कियाँ पूरी-पूरी खुली थीं, लेकिन एक बूँद भी अन्दर नहीं आ रही थी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६८

श्रीअरविन्द के कक्ष में ध्यान

मधुर माँ, आपने कहा है कि श्रीअरविन्द के कमरे में बैठने और वहाँ ध्यान करने की अनुमति पाने के लिए "व्यक्ति को उनके लिए बहुत कुछ कर चुकना चाहिये"। माँ, इससे आपका क्या मतलब है? हम 'प्रभु' के लिए क्या कर सकते हैं जो उनके लिए "बहुत कुछ" होगा?

'प्रभु' के लिए कुछ करने का मतलब है, 'उन्हें' वह देना जो व्यक्ति के पास है, या जो वह करता है, जो वह है, उसको देना। यानी, अपनी चीज़ों का एक हिस्सा दे देना या अपनी सभी चीज़ें 'उन्हें' दे देना, अपने कार्य के एक हिस्से को या अपने सभी कार्यों को 'उन्हें' अर्पण कर देना, या स्वयं को पूरी तरह से, बिना कुछ बचाये 'उनके' सुपुर्द कर देना ताकि 'वे' हमारी प्रकृति को रूपान्तरित करने और उसे दिव्य बनाने के लिए अपने अधिकार में कर लें। लेकिन ऐसे कई लोग हैं जो बिना कुछ दिये, हमेशा लेना और पाना चाहते हैं। ऐसे लोग स्वार्थी होते हैं और श्रीअरविन्द के कमरे में ध्यान करने-योग्य नहीं होते।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *१७ अगस्त १९६०*

अवतार का कार्य

चेतना एक सोपान की तरह है: हर बड़े युग में एक महान् व्यक्ति हुआ जो सीढ़ी में एक डण्डा और बढ़ा सकता था और इतनी ऊँचाई पर पहुँच सकता था जहाँ तक साधारण चेतना पहले कभी नहीं पहुँची। एक ऊँचे स्तर को प्राप्त करके भौतिक चेतना की पहुँच से एकदम बाहर जाना सम्भव है; लेकिन तब सीढ़ी बनी नहीं रहती, जब कि महान् युगों की महान् उपलब्धियाँ वे हैं जिन्होंने भौतिक से नाता तोड़े बिना सोपान पर एक और सीढ़ी लगायी है। 'उच्चतम' तक पहुँचने की क्षमता और साथ-ही-साथ शिखर का निचली सतह के साथ सम्बन्ध जोड़ना महान् उपलब्धि है, न कि अलग-अलग स्तरों, लोकों के सम्बन्ध काट कर बीच-बीच में ख़ालीपन को आने देना। ऊपर और नीचे जाना, उच्चतम का निम्नतम से नाता जोड़ना ही सिद्धि या उपलब्धि का परम रहस्य है, और यही अवतार का काम है। जब-जब अवतार सोपान में एक नयी सीढ़ी जोड़ता है तब-तब धरती पर

एक नयी सृष्टि जन्म लेती है...। अब जो सीढ़ी जोड़ी जा रही है उसे श्रीअरविन्द ने 'अतिमानस' का नाम दिया है; उसके परिणामस्वरूप, चेतना अतिमानसिक लोक में प्रवेश पा सकेगी और फिर भी अपना व्यक्तिगत रूप रख सकेगी और फिर यहाँ लौट कर एक नयी सृष्टि स्थापित करेगी, निश्चय ही यह अन्तिम सीढ़ी नहीं है, इसके ऊपर सत्ता की और भी श्रेणियाँ हैं; लेकिन अभी हम अतिमानस को नीचे लाने के प्रयास में लगे हैं ताकि संसार का पुनर्गठन कर सकें, ताकि जगत् को सच्ची दिव्य व्यवस्था में वापस ला सकें। यह तत्त्वतः व्यवस्था की एक सृष्टि होगी, हर चीज़ अपने सच्चे स्थान पर होगी; इस समय जो शक्ति क्रियाशील है वह है महासरस्वती —पूर्ण व्यवस्था की देवी।

अविच्छिन्नता प्राप्त करने का काम, जो ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने की क्षमता देता है और जो ऊपर है उसे नीचे भौतिक में लाता है, चेतना के अन्दर किया जाता है। अवतार यह काम करने के लिए आता है। अगर उसे कारागार में बन्द कर दिया जाये, न वह किसी से मिले-जुले और न कहीं हिले-डुले, फिर भी वह कार्य करता रहेगा, क्योंकि यह चेतना के अन्दर का काम है, अतिमानस और भौतिक सत्ता को जोड़ने का काम है। उसे पहचाने जाने की ज़रूरत नहीं होती, यह सचेतन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उसे किसी बाहरी शक्ति की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन, एक बार सम्बन्ध स्थापित हो जाये तो बाहरी जगत् पर उसका प्रभाव नव सर्जन के रूप में अवश्य होगा जो एक आदर्श नगरी से लेकर पूर्ण जगत् तक पहुँचेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १८९-९०

जब किसी की नियति ही होती है, योग-पथ पर चलना,
तो सभी परिस्थितियाँ, मन तथा जीवन के सभी विचलन भी,
किसी-न-किसी रूप में उसे पथ पर आगे ही बढ़ाते हैं।

—श्रीमाँ

श्रीअरविन्द के योग का कार्यक्रम

सप्त चतुष्टय

सप्त-चतुष्टय की रूपरेखा
(संशोधित अनुक्रम)

योगांग

सप्त-चतुष्टय

१. सिद्धि-चतुष्टय

शुद्धि, मुक्ति, भुक्ति, सिद्धि।

२. ब्रह्म-चतुष्टय

सर्वम् अनन्तम् ज्ञानम् आनन्दम् ब्रह्म।

३. कर्म-चतुष्टय

कृष्ण, काली, कर्म, काम।

४. शान्ति-चतुष्टय

समता, शान्ति, सुख, हास्य (आत्मप्रसाद)।

५. शक्ति-चतुष्टय

वीर्य, शक्ति, चण्डीभावः, श्रद्धा।

६. विज्ञान-चतुष्टय

ज्ञान, त्रिकालदृष्टि, अष्टसिद्धि, समाधि।

७. शरीर-चतुष्टय

आरोग्य, उत्थापना, सौन्दर्य, विविधानन्द।

सप्त-चतुष्टय के कुछ अंश

सिद्धि-चतुष्टय

शुद्धि, मुक्ति, भुक्ति, सिद्धि

शुद्धि

१. प्राण से उत्पन्न होते हैं वासना या कामना, वस्तुतः यह है, अशक्ति या आसक्ति, भावनाओं की क्रिया, उदाहरण के लिए, यह कामना, यह वासना कि मैं इसके बिना रह नहीं सकता, मुझे यह चाहिये, मुझे वह चाहिये, और तब आता है राग-द्वेष या पसन्द-नापसन्द—मैं इसे अधिक पसन्द करता हूँ। इसके विपरीत भी होता है, यानी, अनासक्ति या अनिच्छा, कामना का अभाव इत्यादि। हमें इनसे भी मुक्त होना है। जब तुम इन सब चीज़ों से मुक्त हो जाओगे, तुम पूर्ण समता पा लोगे। तब स्वाभाविक रूप से तुम पूर्ण शान्ति पा लोगे, यानी, 'दिव्य शान्ति' और प्राप्त कर लोगे पूर्ण-शुद्ध भोग, यानी, 'भागवत भोग'। शान्ति अभावात्मक आनन्द है और जो निर्गुण ब्रह्म में निवास करते हैं उनके अन्दर होती है; शुद्ध भोग भावात्मक आनन्द है और जो त्रिगुणातीत अनन्त ब्रह्म में निवास करते हैं उनके अन्दर होती है। पूर्ण शान्ति पर आधारित शुद्ध भोग के साथ जगत् का आनन्द लो। वह आनन्द जो तुम्हें सन्तुष्ट कामना-वासना के फलस्वरूप प्राप्त होता है, अशान्त, असुरक्षित, उत्तेजित या सीमित होता है, लेकिन शुद्ध भोग होता है शान्त, आत्म-समाहित, विजयी, असीमित, हमेशा अत्यानन्दमय। एक शब्द में कहें तो यह हर्ष नहीं, सुख नहीं बल्कि आनन्द है। यह अमृत है, यह दिव्यत्व और अमरत्व है, यह भगवान् के साथ एकात्म स्वभाव बन जाना है। तब कामना नहीं होती, बल्कि होती है विशुद्ध लिप्सा, भगवान् जो दें उसे लेने और उसका उपभोग करने के लिए असीम तत्परता।

ब्रह्म-चतुष्टय

सर्वम्, अनन्तम्, ज्ञानम्, आनन्दम् ब्रह्म

जब हम विश्व में एक चीज़ को उपलब्ध कर लेते हैं तो सर्वम् ब्रह्म को पा लेते हैं।

जब हम सभी रूपों में अनन्त शक्ति और गुण की लीला को उपलब्ध कर लेते हैं तो अनन्तम् ब्रह्म को पा लेते हैं।

जब हम उस चेतना को उपलब्ध कर लेते हैं जो सब कुछ के बारे में अभिज्ञ होती है तो ज्ञानम् ब्रह्म को पा लेते हैं।

जब हम उस चेतना में सभी चीज़ों का आनन्द पा लेते हैं तो आनन्दम् ब्रह्म को पा लेते हैं।

कर्म-चतुष्टय

कृष्ण, काली, कर्म, काम

कृष्ण हैं—जगत् में आनन्द लेते हुए ईश्वर।

काली हैं—ईश्वर के हर्ष के अनुसार लीला को कार्यान्वित करने वाली शक्ति।

कर्म है—'दिव्य क्रिया'।

काम है—'दिव्य उपभोग'।

शान्ति-चतुष्टय

समता शान्तिः सुखं हास्यम् इति शान्तिचतुष्टयम्।

समता

आन्तरिक शान्ति का आधार है समता, स्थिरता और समान मन के साथ बाहरी चीज़ों के आक्रमणों और आभासों को, चाहे वे प्रिय हों या अप्रिय, दुर्भाग्य और सौभाग्य, सुख, दुःख, मान और अपमान, प्रशंसा या निन्दा, मित्रता या शत्रुता, पापी और सन्त या भौतिक रूप से गरमी और सरदी इत्यादि सबको अपनाने की क्षमता। समता के दो रूप होते हैं, सक्रिय और निष्क्रिय—बाह्य जगत् की वस्तुओं को ग्रहण करने में समता और उनके प्रति प्रतिक्रिया करने में समता।

*

नति है अन्तरात्मा का परमात्मा की इच्छा के प्रति समर्पण, उसके सभी स्पर्शों को भगवान् के स्पर्श के रूप में, सभी अनुभूतियों को मनुष्य की अन्तरात्मा के साथ भगवान् की लीला के रूप में स्वीकारना। *नति* तितिक्षा के साथ हो सकती है, दुःख का अनुभव तो हो परन्तु उसे भागवत

इच्छा के रूप में स्वीकार कर लिया जाये या वह उदासीनता के साथ हो सकती है, उससे ऊपर उठ कर दुःख और सुख को समान रूप से, निम्न यन्त्रों में भगवान् की क्रिया मान कर अथवा आनन्द के साथ भी हो सकती है, यानी हर चीज़ को कृष्ण की लीला के रूप में ग्रहण करना। अतः, अपने-आपको आनन्द-रूप में देखना। यह अन्तिम स्थिति पूर्ण योगी की स्थिति है। क्योंकि भगवान् के प्रति सतत आनन्दमय नमस्कार द्वारा हम अन्ततः दुःख, दर्द आदि के पूरे-पूरे निष्कासन, द्वन्द्वों से पूरी मुक्ति तक जा पहुँचते हैं और छोटी-से-छोटी, अत्यन्त नगण्य, जीवन के असंगत दीखने वाले ब्योरे और इस मानव शरीर की अनुभूति में ब्रह्मानन्द पाते हैं। हम भय और दुःख से एकदम मुक्ति पा लेते हैं—*आनन्दम् हि ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन*। हो सकता है कि हमें तितिक्षा और उदासीनता से आरम्भ करना हो, लेकिन इस आनन्द में ही हमें समता की सिद्धि को पूरा करना चाहिये। योगी विजय और पराजय, सफलता और कुसफलता, सुख और दुःख, मान और अपमान को सम आनन्द के साथ ग्रहण करता है—पहले बुद्धि, योग द्वारा अपने-आपको अभ्यासगत मानसिक और स्नायविक प्रतिक्रियाओं से अलग करके और विचार द्वारा स्वयं अनुभूति की सच्ची प्रकृति और अपनी निजी अन्तरात्मा की प्रकृति पर ज़ोर डालती है। यह अन्तरात्मा गुप्त रूप से आनन्दमय है—सभी चीज़ों में सम आनन्द भरा है। वह अनुभूति के समस्त साधारण मूल्यों को बदलने के लिए आता है। उसके आगे अमंगल मंगल के रूप में प्रकट होता है, पराजय और कुसफलता भगवान् के तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के और अन्तिम विजय की ओर एक चरण के रूप में, दुःख-दर्द सुख के गुप्त और विकृत रूप में प्रकट होते हैं। एक ऐसी अवस्था आती है जब स्वयं शारीरिक पीड़ा, जिसे सहना भौतिक मनुष्यों के लिए सबसे कठिन होता है, अनुभूति में अपना स्वभाव बदल लेती है और भौतिक आनन्द बन जाती है। परन्तु यह अन्त में होता है जब भौतिक द्रव्य में कारावद्ध, मन के आधीन यह मानव सत्ता अपनी अधीनता से निकलती है, अपने मन पर विजय पाती है, अपने शरीर में अपने-आपको पूरी तरह मुक्त कर लेती और अपने आधार के प्रत्येक भाग में अपने सच्चे आनन्दमय स्व का अनुभव करती है।

*

शक्ति-चतुष्टय

वीर्य, शक्तिः, चण्डीभावः श्रद्धा इति शक्तिचतुष्टयम्।

वीर्य : चातुर्वर्ण्य

वीर्य का मतलब है आधारभूत स्वभाव-शक्ति या भागवत स्वभाव की ऊर्जा, जो अपने-आपको चार प्रकार के चातुर्वर्ण्य में प्रकट करती है—ब्रह्मण्य में ब्रह्मशक्ति और ब्रह्मतेज, क्षत्र में क्षात्रशक्ति और क्षात्रतेज, वैश्य में वैश्य-स्वभावशक्ति और तेज और शूद्र स्वभाव-शक्ति और तेज। हमें यह अनुभव करना चाहिये कि चातुर्वर्ण्य से प्राचीन आर्य ऋषियों का मतलब केवल एक सामाजिक वर्गीकरण नहीं बल्कि आधारभूत स्वभाव में अपने-आपको अभिव्यक्त करने वाले भगवान् को पहचानना है। हमारे शारीरिक भेद, हमारी सामाजिक व्यवस्थाएँ उसी को मानव जीवन के प्रतीकों में प्रकट करने का प्रयास मात्र हैं, बहुधा अस्तव्यस्त प्रयास, बहुधा एक हास्यानुकृति, वे जिस भागवत सत्ता को अभिव्यक्त करने की कोशिश करते हैं उसकी विकृति होती है। हर एक मनुष्य के अन्दर चारों धर्म होते हैं परन्तु एक प्रमुख होता है। वह एक में पैदा हुआ है, वही उसके चरित्र का पहला सुर होता है और उसके समस्त कार्यों के प्रकार और ढाँचे का निश्चय करता है। बाक़ी सब प्रमुख प्रारूप के आधीन रहता है और उसे पूरक प्रदान करता है। कोई ब्राह्मण तब तक पूरा ब्राह्मण नहीं हो सकता जब तक उसके अन्दर क्षात्रतेज, वैश्व शक्ति और शूद्रशक्ति भी न हो। परन्तु इन सबको उसके अन्दर उसके ब्रह्मण्य की पूर्णता की सेवा करनी चाहिये। भगवान् अपने-आपको चार प्रजापति या गीता के *चत्वारः मनवः* के रूप में प्रकट करते हैं परन्तु मनुष्य इन चार में से किसी एक के अंश के रूप में पैदा होता है। पहले का वैशिष्ट्य होता है प्रज्ञा और विशालता, दूसरे का शौर्य और शक्ति, तीसरे का कौशल और भोग और चौथे का कर्म और सेवा। पूर्ण बनाया गया मनुष्य अपने अन्दर चारों क्षमताओं को विकसित करता है और एक ही साथ अपने अन्दर प्रज्ञा और विशालता के देव, शौर्य और शक्ति के देव, कौशल और भोग के देव तथा कर्म और सेवा के देव को धारण करता है। केवल एक ही प्रमुख होता है और दूसरों को मार्ग दिखाता और उनका उपयोग करता है।

*

शूद्र निम्न जगत् और उसकी प्रकृति में पूरी तरह से उतरते हुए, अपने-आपको भौतिक द्रव्य तथा भौतिक जगत् में भगवान् की लीला को कार्यान्वित करने के लिए पूरी तरह से देते हुए भगवान् है। इस दृष्टि से शूद्र अन्य सभी शक्तियों से अधिक महान् है क्योंकि उसकी प्रकृति सीधी सम्पूर्ण आत्म-समर्पण की ओर जाती है। परन्तु उसकी बद्ध शक्ति ने अपने-आपको ज्ञान, शक्ति और कौशल से काट लिया है और अपने-आपको तमोगुण में खो दिया है। उसे अपने अन्दर फिर से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को प्राप्त करना है और उन्हें भगवान्, मनुष्य, सभी प्राणियों की सेवा में अर्पित कर देना है। उसके अन्दर काम के तत्त्व को भौतिक कल्याण और विषयासक्ति की खोज से हटा कर जड़-भौतिक में अभिव्यक्त भगवान् के आनन्द में बदल देना चाहिये। प्रेम के तत्त्व को अपने-आपको पाना और दास्य-लिप्सा तथा आत्म-समर्पण में यानी, अपने-आपको भगवान् के प्रति और मनुष्य में स्थित भगवान् के प्रति अर्पण में तथा भगवान् की ओर मनुष्य में स्थित भगवान् की निःस्वार्थ सेवा में परिपूर्ण करना चाहिये। शूद्र कलियुग का प्रधान भाव है जैसे वैश्य द्वापर का, क्षत्रिय त्रेता का और ब्राह्मण सत्ययुग का।

*

भगवान् के प्रेम और ज्ञान में उनकी अपने-आपको हमारे द्वारा पूर्ण करने की, योगसिद्धि को पूर्ण करने, हमारे जीवन-कार्य को पूर्ण करने की, हमारे समस्त शुभ के लिए कार्यान्वित करने की हमारे अन्दर श्रद्धा होनी चाहिये—भले वह ऊपरी तौर से अशुभ के परदे से ढकी हो—भगवान् द्वारा अभिव्यक्त शक्ति की सामर्थ्य में श्रद्धा होनी चाहिये। उस शक्ति की सामर्थ्य में जिसे भगवान् इस आधार में उसके पोषण के लिए, भागवत ज्ञान, शक्ति और आनन्द को योग तथा जीवन में क्रियान्वित करने और परिपूर्ण करने के लिए अभिव्यक्त करते हैं। श्रद्धा के बिना शक्ति नहीं होती, अपूर्ण श्रद्धा का अर्थ है अपूर्ण शक्ति। अपूर्णता श्रद्धा की शक्ति में हो सकती है या उसके प्रकाश में। पहले श्रद्धा की पूर्ण शक्ति का होना काफ़ी है क्योंकि हम योग के आरम्भ से ही पूरे प्रकाश की आशा नहीं कर सकते। लेकिन, तब अगर हम भूल करते और ठोकर खाते हैं तो हमारी श्रद्धा की शक्ति

हमें सहारा देगी। जब हम देख नहीं सकते तो हम जानेंगे कि भगवान् ने प्रकाश को रोक रखा है, वे हमारे ऊपर ज्ञान की ओर एक चरण के रूप में भूल आरोपित कर रहे हैं, ठीक वैसे ही जैसे वे हमारे ऊपर विजय की ओर एक चरण के रूप में पराजय आरोपित करते हैं।

*

विज्ञान-चतुष्टय

विज्ञान

ज्ञानम्, त्रिकालदृष्टिः, अष्टसिद्धिः, समाधिः इति विज्ञानचतुष्टयम्।

अन्तर्भास और विवेक

अन्तर्भास वह शक्ति है जो सत्य को पहचानती है और तुरन्त उसके सत्य होने के लिए उचित कारण बतलाती है। विवेक वह शक्ति है जो तुरन्त आवश्यक सीमाएँ और प्रभेद खड़े कर देती है और बौद्धिक भ्रान्ति को घुसने से और अपूर्ण सत्य को पूर्ण सत्य के रूप में मान्यता पाने से रोकती है।

मनुष्य की वर्तमान अवस्था में उसकी प्रगति के लिए विवेक की सर्वाधिक आवश्यकता है। आजकल बड़े-से-बड़े आदमियों में विज्ञान की शक्तियाँ अपनी निजी शक्ति, स्थान और प्रकृति में काम नहीं करतीं, बल्कि बुद्धि में, बुद्धि की सहायक और कभी-कदास पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करती हैं। जैसे ही हमें अन्तर्भास या अन्तःप्रकाश प्राप्त होता है, बुद्धि, स्मृति, कल्पना, तार्किक क्षमता उसे पकड़ लेती है और उसे सत्य और भ्रान्ति के मिश्रित आवरण में छिपाना शुरू करती है और उसकी प्रकृति और उसके मूल्यांकन को शुद्ध करने और सत्य के स्तर तक ऊँचा उठाने की जगह, सत्य को प्रकृति के स्तर तक, मनुष्य के संस्कार और पसन्द-नापसन्द तक उतार लाती है। विवेक के बिना ये शक्तियाँ मनुष्य के लिए उतनी ही ख़तरनाक हैं जितनी सहायक। वे जो प्रकाश देती हैं वह बुद्धि के प्रकाश से अधिक चमकदार होता है परन्तु बुद्धि उनके चारों ओर जो छाया पैदा कर देती है वह प्रायः अज्ञान के उस कुहासे से ज़्यादा अँधेरा होता है जो सामान्य बौद्धिक ज्ञान को घेरे रहता है। इस तरह जो लोग अज्ञान के साथ इन शक्तियों का उपयोग करते हैं, वे प्रायः उनकी अपेक्षा ज़्यादा ठोकरें खाते हैं जो बुद्धि की स्पष्ट किन्तु सीमित रोशनी में चलते हैं। ये शक्तियाँ

जब हमारे अन्दर काम करना शुरू करें तो हमें धीर और स्थिर होना चाहिये, हमें अपने उत्साह में बह न जाना चाहिये। हमें विवेक को समय देना चाहिये कि वह हमारे विचारों और अन्तर्भासों को पकड़ कर उन्हें व्यवस्थित करे, बौद्धिक तत्त्वों को उनके विज्ञानमय तत्त्वों से अलग करे, उनके मिथ्या विस्तार, मिथ्या सीमांकन, भूल-भरे कार्यान्वयन को ठीक करे और उन्हें उचित कार्यान्वयन, उचित विस्तार और उचित सीमाएँ दे और उपनिषद् के रूपक के अनुसार इनसे व्यूह या ज्ञान-सूर्य की किरणों का विन्यास *'सूर्यस्य रश्मयः'* बनाये। ज्ञान उतावले मन के लिए नहीं, केवल धीर के लिए होता है जो लम्बे समय तक बैठ कर अपने भण्डार को इकट्ठा करता और व्यवस्थित करता रह सकता है, टुकड़ों को लेकर उस कौए की तरह भाग नहीं जाता जो, जिस पहले भोजन के ग्रास पर उसका मुँह पड़े, उसी को लेकर उड़ जाता है।

*

इस भौतिक विश्व में शरीर प्रतिष्ठा है। धरती पर भागवत लीला को कार्यान्वित करने के लिए ज़रूरी है कि उसमें विशेष रूप से धारण-सामर्थ्य हो यानी शक्ति, आनन्द, विस्तृत होते हुए ज्ञान और उस सत्ता के पूरे वेग को धारण करने की शक्ति, जो सिद्धि की प्रगति के साथ-साथ मन, प्राण और शारीरिक क्रिया-कलाप में उतरती है। अगर शरीर अयोग्य है तो वह इन चीज़ों को पूरी तरह धारण करने में असमर्थ होगा। अति हो जाये तो भौतिक मस्तिष्क ऊपर से आने वाले धक्के से इतना अधिक गड़बड़ा जाता है कि वह पागलपन तक पहुँच सकता है। परन्तु यह एकदम अयोग्य और अशुद्ध आधारों में होता है या जब काली असुर के उसे पकड़ने और उसके द्वारा अपनी घृणित और अशुद्ध कामनाओं को पूरा करवाने के प्रयास का बदला लेने के लिए क्रोध और उग्रता के साथ उतरती है। सामान्यतः, शरीर के स्नायु-तन्त्र तथा भौतिक मस्तिष्क की अक्षमता, अपने-आपको प्रगति की मन्दता में, हलकी अस्तव्यस्तता और बीमारी में, सिद्धि के ऊपर अस्थिर अधिकार को प्रकट करती है जब कि सिद्धि आती और फिसल जाती है, कार्य करती और खिसक जाती है। धारण-सामर्थ्य मन, प्राण और शरीर की शुद्धि से आती है। पूर्ण सिद्धि पूर्ण शुद्धि पर निर्भर करती है।

CWSA खण्ड १०, पृ. ११-१२

योग तथा उसका उद्देश्य

योग भगवान् के लिए करना होगा

जिस योग का हम सब अभ्यास करते हैं वह केवल हम सबके लिए नहीं, बल्कि भगवान् के लिए है। इसका लक्ष्य है, विश्व में भागवत संकल्प को कार्यान्वित करना, आध्यात्मिक रूपान्तर सम्पन्न करना तथा मानवता की मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक प्रकृति और जीवन में एक दिव्य प्रकृति तथा एक दिव्य जीवनए को नीचे उतार लाना। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, यद्यपि मुक्ति योग की एक अनिवार्य शर्त है—बल्कि मानव-मात्र की मुक्ति तथा रूपान्तर है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत आनन्द नहीं बल्कि भागवत आनन्द को—ईसा के स्वर्गिक राज्य को, हम सबके सत्ययुग को धरती पर उतारना है। मोक्ष हमारी व्यक्तिगत आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आत्मा तो नित्यमुक्त है तथा बन्धन एक भ्रम है। हम सब बन्धनयुक्त होने की लीला करते हैं, वास्तव में आबद्ध नहीं हैं। जब भगवान् संकल्प करते हैं तब हम मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि वे, परम पुरुष, लीला के स्वामी हैं तथा उनकी कृपा तथा स्वीकृति के बिना कोई आत्मा लीला से अलग नहीं हो सकती। प्रायः यह हमारे अन्दर मन के माध्यम से भगवान् का ही संकल्प होता है कि हम अज्ञान का, द्वैत का, हर्ष व शोक का, सुख व दुःख का, पाप-पुण्य का उपभोग और त्याग का भोग स्वीकार करें। युगो-युगों तक अनेक देशों में वे योग के बारे में कभी सोचते तक नहीं बल्कि शताब्दियों तक अथक रूप से इसी लीला की लीला करते रहते हैं। इसमें कुछ भी अमंगल नहीं है, ऐसा कुछ नहीं है जिसकी भर्त्सना करने की आवश्यकता हो अथवा जिससे डरने की ज़रूरत पड़े—यह भगवान् की लीला है। इस सत्य को जो जान लेता है वही ज्ञानी पुरुष है और अपनी मुक्ति को जानते हुए भी भगवान् की लीला में भाग लेता है तथा लीला की विधि में परिवर्तन के लिए उनके आदेश की प्रतीक्षा करता है।

CWSA खण्ड १३, पृ. ७१ **श्रीअरविन्द**

आदेश अभी है

आदेश अभी है। भगवान् अपने लिए हमेशा एक देश को चुन कर रखते हैं जिसमें उच्चतर ज्ञान को सभी संयोगों तथा ख़तरों से कुछेक अथवा अनेक व्यक्तियों के द्वारा बचा कर निरन्तर सुरक्षित रखा जाता है तथा अभी वर्तमान समय में, कम-से-कम इस चतुर्युग में वह देश भारत है। जब भी वे अज्ञान का, द्वैयात्मकता का, संघर्ष, क्रोध, आँसू तथा दुर्बलता तथा स्वार्थपरता का, पूर्ण आनन्द का, संक्षेप में, कलियुग की लीला के तामसिक तथा राजसिक सुख का उपभोग करना चाहते हैं तब वे भारत में ज्ञान को मन्द कर देते हैं और उसे दुर्बलता तथा अपमानजनक परिस्थिति में गिरा देते हैं जिससे वह आत्म-निवृत्त हो जाये और उनकी लीला की इस गति के साथ हस्तक्षेप न करे। जब वे पंक से ऊपर उठना चाहते हैं तथा यह चाहते हैं कि मनुष्य के अन्दर का नारायण पुनः एक बार शक्तिशाली तथा ज्ञानी और आनन्दमय बन जाये तब वे एक बार पुनः भारत पर ज्ञान की वर्षा कर देते हैं और उसे ऊपर उठा देते हैं जिससे वह पूरे विश्व को शक्ति, प्रज्ञा तथा आनन्द के आवश्यक परिणामों के साथ ज्ञान दे सके। जब ज्ञान की संकुचित गति होती है तब भारत में योगी संसार से निवर्तित होकर अपनी मुक्ति और आनन्द के लिए अथवा कुछ शिष्यों की मुक्ति के लिए योगाभ्यास करते हैं। परन्तु जब ज्ञान की गति पुनः विस्तारित होती है तथा भारत की आत्मा इसके साथ विस्तारित होती है तब वे एक बार पुनः आगे आते हैं तथा विश्व में विश्व के लिए कार्य करते हैं। जनक, अजातशत्रु तथा कार्तवीर्य एक बार पुनः संसार के सिंहासनों पर बैठते हैं और राष्ट्रों पर राज्य करते हैं।

पूर्णयोग

मनुष्य की तथा वस्तुओं की प्रकृति वर्तमान समय में एक विसंगति है, एक ऐसी समस्वरता जो बेसुरी हो गयी है। मनुष्य के सम्पूर्ण हृदय, कर्म तथा मन को बदलना होगा, परन्तु अन्दर से, बाहर से नहीं, राजनीतिक तथा सामजिक संस्थाओं के द्वारा नहीं, पन्थों तथा दर्शन-शास्त्रों द्वारा भी नहीं, बल्कि अपने और विश्व के अन्दर भगवान् की सिद्धि के द्वारा तथा उस सिद्धि के माध्यम से जीवन के पुनर्गठन के द्वारा।

यह केवल पूर्णयोग के द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है, एक ऐसे योग के द्वारा जो किसी विशेष उद्देश्य के प्रति समर्पित न हो—चाहे वह उद्देश्य मुक्ति अथवा आनन्द ही क्यों न हो—बल्कि हम सबके तथा दूसरों के अन्दर दिव्य मानवता की परिपूर्ति के प्रति समर्पित हो। इस उद्देश्य के लिए हठयोग तथा राजयोग पर्याप्त नहीं हैं, यहाँ तक कि त्रिमार्ग भी यह कार्य नहीं करेगा। हमें और ऊँचा जाना होगा और अध्यात्म-योग का आश्रय लेना होगा।

सत्त्वगुण का ख़तरा

सत्त्वगुण का ख़तरा यह है कि साधक अपनी बुद्धि के किसी एक-पक्षीय निष्कर्ष के प्रति, साधना की किसी विशेष क्रिया अथवा गति के प्रति, योग की किसी सिद्धि-विशेष के आनन्द के प्रति, सम्भवतः शुद्धता के बोध या किसी विशेष शक्ति पर अधिकार अथवा भागवत सम्पर्क के आनन्द या मुक्ति की अनुभूति के प्रति आसक्त हो जाता है तथा उसके लिए ललकता है, केवल उसी के प्रति आसक्त रहता है और कुछ नहीं करता। स्मरण रखो कि योग तुम्हारे अपने लिए नहीं है। यद्यपि ये चीज़ें सिद्धि के अंग हैं पर सिद्धि के उद्देश्य नहीं हैं, क्योंकि तुमने आरम्भ में ही यह निश्चय कर लिया है कि तुम भगवान् से कोई माँग या दावा नहीं करोगे, बल्कि वही ग्रहण करोगे जो वे तुम्हें स्वेच्छा से देंगे। जहाँ तक आनन्द का प्रश्न है, निस्स्वार्थ आत्मा भगवान् की उपस्थिति के आनन्द को भी—यदि यही भगवान् का संकल्प है—छोड़ देगी। तुम्हें उच्चतम सात्त्विक अहंकार से भी मुक्त होना होगा, यहाँ तक कि मुमुक्षुत्व के सूक्ष्म अज्ञान, मुक्ति की कामना से भी—तथा समस्त आनन्द को अनासक्त भाव से ग्रहण करना होगा। तब तुम सिद्ध पुरुष अथवा *गीता* के पूर्ण मनुष्य बन जाओगे।

*

स्मरण रखो कि एक-पक्षीय दर्शन हमेशा सत्य के आंशिक कथन होते हैं। संसार, जैसा कि भगवान् ने इसे बनाया है, एक अनम्य, तर्कमूलक श्रम नहीं है, बल्कि संगीत के एक लय के समान अनेक विविधताओं का एक अनन्त सामञ्जस्य है तथा उसका अपना अस्तित्व है और मुक्त तथा निरपेक्ष होने के कारण तर्कसंगत रूप से उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता।

लक्ष्य

जो लक्ष्य हम लोगों के लिए अंकित किया गया है वह इन चीज़ों के विषय में अनुमान करना नहीं बल्कि उन्हें अनुभव करना है। भगवान् की छवि में वर्धित होने, उनके अन्दर और उनके साथ निवास करने, उनके आनन्द और उनकी शक्ति का एक माध्यम तथा उनके कार्यों का एक यन्त्र बनने के लिए हमारा आह्वान किया गया है। सब प्रकार के अशुभ से शुद्ध होकर, उनके स्पर्श के द्वारा आत्मा में रूपान्तरित होकर हम सबको संसार में उस दिव्य विद्युत् के डायनेमो के समान कार्य करना है तथा पूरी मानवजाति को पुलकित तथा कान्तिमय कर देना है जिससे जहाँ भी हम लोगों में से कोई एक खड़ा हो जाये, उसके चारों ओर सैकड़ों लोग उसकी ज्योति और शक्ति से परिपूर्ण हो जायें, भगवान् और आनन्द से भर जायें। गिरजाघर, पन्थ, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मानवजाति की रक्षा करने में असफल रहे, क्योंकि वे बौद्धिक सम्प्रदायों, सिद्धान्तों, अनुष्ठानों, प्रथाओं, आचार-शुद्धि तथा दर्शनों में उलझ गये मानों उनसे ही मानवजाति का त्राण हो जायेगा। और एक आवश्यक चीज़ की उपेक्षा कर दी— वह थी आत्मा की शक्ति तथा उसका शुद्धीकरण। हमें एक अत्यन्त अनिवार्य वस्तु की ओर लौटना होगा, मानव की पवित्रता तथा पूर्णता के ईसा के उपदेश, मोहम्मद के भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण तथा सेवा के सन्देश, मानव में स्थित ईश्वर के प्रति पूर्ण प्रेम व आनन्द के चैतन्य के सन्देश, रामकृष्ण के सभी धर्मों की एकता तथा मानव में से भगवान् की दिव्यता के उपदेश को पुनः ग्रहण करना होगा और इन सभी धाराओं को एक विशाल नदी, एक शोधक तथा मुक्तिदायिनी गंगा में एकत्र कर भौतिकवादी मानवता की सप्राण-मृत्यु पर इसे उँडेल देना होगा जैसा कि भगीरथ ने गंगा को उतार कर उसमें अपने पितरों के भस्मों को प्रवाहित कर दिया था जिससे मानवजाति में उनकी आत्माओं का पुनर्जन्म हो सके और कुछ समय के लिए विश्व में सत्ययुग का पुनरागमन हो जाये। फिर भी, केवल यही लीला का अथवा योग का सम्पूर्ण उद्देश्य नहीं है। जिस उद्देश्य से अवतार धरती पर आते हैं वह है मनुष्य को बार-बार ऊपर उठाना, उसके अन्दर एक उच्चतर तथा सदा उच्चतर मानवता को विकसित करना, दिव्य सत्ता का उच्चतर से उच्चतर विकास, धरती पर अधिक-से-अधिक स्वर्ग को उतारना जब तक

हम लोगों का परिश्रम सार्थक न हो जाये, हम लोगों का कार्य पूरा न हो जाये तथा भौतिक जगत् में यहाँ हम सब में सच्चिदानन्द परिपूर्ण न हो जायें। जो केवल अपनी मुक्ति या कुछ लोगों की मुक्ति के लिए श्रम करते हैं और यदि सफल भी हो जाते हैं तब भी उनका कार्य छोटा है। लेकिन उसका कार्य अनन्त रूप से बड़ा है जो सम्पूर्ण मानवजाति में आत्मा की शान्ति, आनन्द, शुद्धता तथा पूर्णता लाने के लिए जीवित रहता है—चाहे वह असफल भी हो जाये या केवल आंशिक रूप से या केवल कुछ समय के लिए सफल हो।

पथ

कहा जाता है कि "सनत्सुजातीय" में सिद्धि के लिए चार चीज़ें आवश्यक बतायी गयी हैं—शास्त्र, उत्साह, गुरु तथा काल—पथ के लिए उपदेश, इसके अनुशीलन के लिए उत्साह, गुरु तथा समय। तुम्हारा पथ यही है जिसका संकेत मैं दे रहा हूँ। आवश्यक उत्साह है यह अनुमति और यह नित्य स्मरण। गुरु स्वयं भगवान् हैं तथा शेष के लिए केवल समय की ज़रूरत है। जब शास्त्र तुम्हारे पास आ जायेगा तब तुम जान लोगे कि भगवान् स्वयं गुरु हैं। तुम देखोगे कि योग की स्वाभाविक प्रक्रिया को कार्यान्वित करने के लिए कैसे तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे बाहर प्रत्येक छोट ी-से-छोटी परिस्थिति को सूक्ष्म रूप से अनन्त ज्ञान के द्वारा सुनियोजित और उत्पन्न किया गया है, कैसे आन्तरिक तथा बाह्य गतिविधियों को एक-दूसरे पर कार्य करने के लिए व्यवस्थित तथा एक साथ एकत्र किया गया है जिससे अपूर्णता को ठीक किया जा सके और पूर्णता में कार्य किया जा सके। तुम्हारे उत्थान के लिए एक सर्वशक्तिमान् प्रेम तथा प्रज्ञा कार्यरत हैं। इसलिए इसमें कितना समय लगता है, इसके लिए परेशान न होओ, चाहे जितना भी लम्बा समय लगे। बल्कि जब अपूर्णताएँ तथा बाधाएँ सामने आयें तब अप्रमत्त, धीर बने रहो, उत्साह बनाये रखो तथा शेष कार्य भगवान् पर छोड़ दो। काल अनिवार्य है। तुम्हारे अन्दर एक विशाल कार्य किया जा रहा है, सम्पूर्ण मानव प्रकृति को एक दिव्य प्रकृति में परिवर्तित किया जा रहा है, विकास की अनेक शताब्दियों को कुछेक वर्षों में समेटा जा रहा है। तुम्हें समय की शिकायत नहीं करनी चाहिये।

अन्य मार्ग अधिक शीघ्र परिणाम देने का प्रस्ताव करते हैं या कोई विशेष क्रिया बताते हैं जिसका तुम अभ्यास कर अपने अहंकार को यह सन्तुष्टि दे सकते हो कि तुम कुछ कर रहे हो, आज इतने प्राणायाम कर लिये, इतनी देर तक आसन किया, इतनी बार नाप-जाप कर लिया, इतना कुछ कर लिया, इतनी प्रगति तो सुनिश्चित हो गयी। परन्तु जब एक बार इस पथ को चुना है तब इसके साथ चिपके रहना होगा। वे सब मानवीय विधियाँ हैं, वह विधि नहीं है जिसके द्वारा अनन्त शक्ति कार्य करती है, जो नीरव गति करती है, कभी-कभी अदृश्य रूप से लक्ष्य की ओर बढ़ती है, यहाँ कभी आगे बढ़ती है, वहाँ कभी रुक जाती है, फिर बड़ी सबलता से तथा विजयोल्लास के साथ उस महान् चीज़ को प्रकट करती है जिसे उसने सम्पन्न किया है। कृत्रिम मार्ग उन नहरों के समान हैं जो मनुष्य की बुद्धि के द्वारा बनायी गयी हैं, तुम आसानी से, सुरक्षापूर्वक और सुनिश्चित होकर यात्रा करते हो, किन्तु केवल एक निश्चित स्थान से दूसरे निश्चित स्थान तक। यह मार्ग विस्तृत और पथविहीन सागर के समान है जिसके द्वारा तुम विश्व के सभी भागों की विस्तारपूर्वक यात्रा कर सकते हो तथा अनन्त की स्वच्छन्दता में प्रवेश कर जाते हो। इसके लिए तुम्हें जिन चीज़ों की जरूरत है वे हैं पोत, परिचालनचक्का, दिशासूचक कम्पास, चालक शक्ति तथा एक कुशल कप्तान। तुम्हारा पोत ब्रह्मविद्या है, श्रद्धा तुम्हारा परिचालनचक्का है, आत्म-समर्पण तुम्हारा कम्पास, चालक शक्ति वह है जो भगवान् के आदेश पर जगतों की सृष्टि करती है, उन्हें निर्देशित करती है तथा उनका विध्वंस कर देती है। और भगवान् स्वयं तुम्हारे कप्तान हैं। परन्तु उनकी अपनी कार्य-प्रणाली है और हर चीज़ के लिए उनका अपना समय होता है। उनकी प्रणाली पर निगरानी रखो और उनके समय की प्रतीक्षा करो।

श्रीअरविन्द

हे प्रभो, मैं तुझे गहरी, शुद्ध भक्ति के साथ नमन करती हूँ।
प्रभो, सभी हृदयों का एकमात्र स्वामी बन जा।

—श्रीमाँ

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

अगस्त

१. अगर हम अपनी अच्छी-से-अच्छी स्थिति में रहें तो हमेशा अपना अधिकार खोये बिना स्थिति को सम्भाल सकेंगे।

२. केन्द्रीय सत्ता वह है जिस पर और सब आश्रित होते हैं। अगर वह अपना पूरा-पूरा समर्पण कर दे, यानी अपनी अलग-थलग पूर्णता की माँग न करे, ताकि भगवान् का यन्त्र बन सके, तो मन, प्राण और शरीर के लिए समर्पण आसान हो जाता है।

३. वर दे कि हर चीज़ सच्ची, निष्कपट और ग्रहणशील बने, उस सबसे मुक्त हो जो अभिव्यक्ति में बाधा देती है, संक्षेप में, मेरे शरीर के उन सभी अंशों को तेरे प्रति खोले जो पहले से तू नहीं है।

४. प्रश्न : नींद में भी हम भगवान् को कैसे याद रख सकते हैं?
उत्तर : यह चेतना के विकास पर निर्भर करता है, लेकिन पहले तुम्हें अपनी जाग्रत् अवस्था में भगवान् को सदा याद रख सकना चाहिये।

५. काम के लिए उचित सामञ्जस्य और सुविधा के लिए नियम बनाये जाते हैं। अगर तुम उनकी अवहेलना करते हो तो तुम अव्यवस्था, अक्षमता और ढील पैदा करते हो और अपने-आप भी शिथिल बने रहते हो। शिथिल, लापरवाह, अनियन्त्रित और अपूर्ण रह जाते हो; इसीलिए अनुशासन अच्छी चीज़ है।

६. लोगों की प्रतिक्रियाओं के बारे में चिन्ता न करो, वे चाहे जितनी अप्रिय क्यों न हों—प्राण सब जगह है और हर एक में अशुद्धियाँ भरी हैं और भौतिक निश्चेतना से भरा है। चाहे जितना समय क्यों न लगे इन दो अपूर्णताओं को दूर करना चाहिये और हमें इस पर धीरज और साहस के साथ लगे रहना चाहिये।

७. जो तुम्हें भगवान् की ओर ले जाये उसे अच्छा मानना चाहिये और वह सब तुम्हारे लिए बुरा है जो तुम्हें भगवान् से दूर ले जाये।

८. निश्चल-नीरवता चेतना की एक अवस्था है जो ऊपर से अपने-आप तब आती है जब तुम भागवत चेतना की ओर खुलते हो...

ज़रूरत है एक अचञ्चल मन की जो तेज़ी या बुदबुदाहट के बिना चीज़ों को देखता है, न हड़बड़ी करता है और न ऊटपटाँग बातें सोचता है।

९. प्राण का उचित रूप से उपयोग किया जाये तो वह अच्छा होता है—यह क्रिया के लिए आवश्यक यन्त्र है। लेकिन साधारणतः अपनी निम्न क्रिया में यह अहं और कामना का यन्त्र होता है—इसी कारण इसमें बह जाने की जगह इसे कठोर अनुशासन में रखना चाहिये।

१०. ग्रहणशीलता है, भगवान् की क्रिया को अपने अन्दर प्रवेश करने देने और बनाये रखने की क्षमता।

११. प्रश्न : मैं अपने मन के सबसे प्रबुद्ध भाग को हमेशा ऊपर कैसे रख सकता हूँ?

उत्तर : इच्छा करो, और जब-जब अन्धकारमय, अज्ञानी और अहंकारी भाग तुम्हारी सत्ता पर अधिकार करने की कोशिश करे तब-तब प्रबुद्ध भाग को हस्तक्षेप करने के लिए पुकारो।

१२. दुःखी होने का कोई फ़ायदा नहीं। तुम जितनी शक्ति दुःख के अनुभव में नष्ट करते हो उसका ज़्यादा अच्छा उपयोग ग़लत गतिविधि को रूपान्तरित करने में होगा।

१३. थके, अवसादग्रस्त, हतोत्साह या अधीर हुए बिना, प्रयास छोड़े बिना और अपने लक्ष्य या दृढ़ निश्चय को छोड़े बिना, बिना किसी कठिनाई या कष्ट के, प्रयास किये जाने की शक्ति है—सहनशीलता।

१४. अनुशासन का अर्थ है, नियन्त्रण या औचित्य के मानदण्ड के अनुसार जीना और कार्य करना। प्राण और शरीर को अपनी मर्ज़ी के अनुसार न करने देना और मन को सत्य या सुव्यवस्था की परवाह किये बिना अपनी सनक के अनुसार दौड़-भाग न करने देना। और जिनकी आज्ञा माननी चाहिये उनकी आज्ञा मानना।

१५. अध्ययन करो, अपने मन को विकसित करो, ज्ञान में रस लो, विकसित मन और इच्छा-शक्ति तुच्छ संवेदनों के प्रभुत्व से बचाते हैं।

१६. माताजी की उपस्थिति सदा बनी रहती है, लेकिन अगर तुम अपने ही तरीक़े से, अपने ही विचार से, चीज़ों के बारे में अपनी ही धारणा के अनुसार, अपनी ही इच्छा और अपनी ही माँग के मुताबिक

निश्चय करो तो बहुत सम्भव है कि उनकी उपस्थिति परदे के पीछे हो जाये। वे अपने-आपको नहीं खींच लेती हैं बल्कि स्वयं तुम उनसे पीछे हट जाते हो।

१७. माताजी की शक्ति केवल सत्ता के शिखर पर ही नहीं है। वह तुम्हारे साथ और तुम्हारे निकट है और जब कभी तुम्हारी प्रगति काम करने दे तो वह क्रिया करने के लिए तत्पर रहती है।

१८. प्रश्न : कृतज्ञता क्या है?

उत्तर : यह वह भावना है जो तुम्हारे अन्दर उनके लिए होती है या होनी चाहिये जो तुम्हारे साथ भलाई करते हैं।

१९. प्रश्न : मानसिक और प्राणिक भक्ति क्या है?

उत्तर : प्राणिक भक्ति अहंकारपूर्ण होती है। वह साधारणतः भगवान् पर अधिकार या उनसे की गयी माँगों से भरी रहती है और जब-जब उनकी तृप्ति न हो, वह विद्रोह करती है। मानसिक भक्ति विचारों और भावों में पूजा होती है, परन्तु हृदय में प्रेम नहीं होता।

२०. प्रश्न : सच्ची भक्ति क्या है?

उत्तर : चैत्य भक्ति जो भगवान् के सिवा और कुछ नहीं माँगती, वह हमेशा भगवान् की ओर मुड़ी रहती है।

२१. हमेशा इस तरह रहो मानों तुम सीधे परम पुरुष और भगवती माता की नज़र के सामने हो। ऐसी कोई चीज़ न करो, ऐसी कोई भी चीज़ सोचने और अनुभव करने की कोशिश न करो जो भागवत उपस्थिति के अयोग्य हो।

२२. जो काम जल्दी में किया जाता है वह कभी अच्छी तरह नहीं किया जाता।

२३. प्रश्न : जब उदासी आये तो हमें क्या करना चाहिये?

उत्तर : उसे उसी तरह झाड़ दो जिस तरह तुम अपने पैरों से धूल झाड़ देते हो।

२४. दूसरों के दोषों के बारे में बोलना निस्सन्देह बहुत बुरा है। सबके अपने दोष होते हैं और अपने विचारों में उन पर ज़ोर देना निश्चय ही उन्हें ठीक करने में सहायता नहीं देता।

२५. हमें उन ग़लतियों पर सन्ताप नहीं करना चाहिये जो हमने की हैं;

केवल अपनी अभीप्सा में पूर्ण निष्कपटता को बनाये रखने की आवश्यकता है—तब अन्त में सब कुछ अच्छा होगा।

२६. केवल सामान्य जीवन से बेचैनी-भरा असन्तोष ही इस योग के लिए काफ़ी तैयारी नहीं है। एक निश्चित आन्तरिक पुकार, प्रबल इच्छा और बहुत स्थिरता आध्यात्मिक जीवन में सफलता के लिए ज़रूरी हैं।

२७. जिनके अन्दर भगवान् के लिए सच्ची-निष्कपट पुकार है उनमें मन और प्राण चाहे जितनी कठिनाइयाँ खड़ी करें या आक्रमण आयें, प्रगति धीमी और कष्टदायक हो—वे चाहे कुछ समय के लिए पथ से गिर जायें या बहक जायें, फिर भी चैत्य पुरुष अन्त में विजयी होता है और भागवत कृपा प्रभावकारी सिद्ध होती है। इस पर विश्वास रखो और डटे रहो, तो लक्ष्य निश्चित है।

२८. अपनी अशुद्धियों के बारे में बहुत सोचना सहायता नहीं करता। तुम जो पवित्रता, प्रकाश और शान्ति पाना चाहते हो, उन पर अपने विचार को स्थिर रखना ज़्यादा अच्छा है।

२९. यह आवश्यक नहीं है कि अभीप्सा विचार के आकार में हो—वह अन्दर एक ऐसी भावना हो सकती है जो उस समय भी बनी रहती है जब मन कार्य में व्यस्त हो।

३०. अधीरता हमेशा भूल होती है। वह सहायता नहीं, बाधा देती है। साधना के लिए स्थिर, प्रसन्नचित्त श्रद्धा और विश्वास सबसे अच्छा आधार है। बाक़ी के लिए, ऐसी अभीप्सा के साथ जो तीव्र हो सकती है पर सदा अचञ्चल और स्थिर हो, ग्रहण करने के लिए अपने-आपको सदा खुला रखो। पूर्ण यौगिक सिद्धि एकदम-से नहीं आती। वह आधार की लम्बी तैयारी के बाद आती है जिसमें बहुत समय लग सकता है।

३१. अपनी श्रद्धा बनाये रखने का मतलब है यह कहना, "अच्छा, मेरे आगे कठिनाइयाँ हैं पर मैं चलता रहूँगा।" निराशा—यह तुम्हारे पैर काट देती है, तुम्हें रोक देती और तुम्हें इस स्थिति में छोड़ देती है : "सब ख़तम, मैं अब और नहीं बढ़ सकता।" यह ऐसी चीज़ है जिसे कभी न आने देना चाहिये।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

आन्तरिक यात्रा के कुछ चरण

भगवान् से सम्पर्क पाने से पहले भी तुम भगवान् से मार्ग-दर्शन चाह सकते हो, कम-से-कम अपने रोज़ के कामों में। आज मनुष्य के जटिल जीवन में सोचने का एक ही सीधा मार्ग है और लाखों ग़लत मार्ग हैं। धर्म और सामाजिक विचार पर आधारित हमारे सभी मूल्य और विचार, ठीक और ग़लत के विचार, कोई भी सच्चा नहीं है, सभी अपूर्ण हैं। एकमात्र सच्ची चीज़ वही है जो भगवान् चाहते हैं। लेकिन भगवान् के साथ सम्पर्क पाने से पहले भगवान् की आवाज़ को कैसे सुना जाये, चेतना के विकास से पहले यह कैसे किया जाये? यह एक बहुत ज़रूरी प्रश्न है। अपने दैनिक जीवन में यह उपलब्धि कैसे प्राप्त की जाये ताकि हमारा व्यक्तित्व, हमारे दैनिक क्रिया-कलाप संघटित हो सकें। इस मार्ग-दर्शन को पा लेने को ही मैं 'आन्तरिक यात्रा' कहता हूँ।

पहले शरीर की बात लें। भौतिक शरीर भौतिक जगत् के साथ पञ्चेन्द्रियों के द्वारा जुड़ा हुआ है। फिर प्राण-शरीर है। कुछ मनोवैज्ञानिक पद्धतियाँ भौतिक शरीर के परे की हर चीज़—मानसिक, प्राणिक, चैत्य—आदि सभी को सूक्ष्म शरीर में गिन लेती हैं। तुम्हारा प्राणमय शरीर भौतिक शरीर के चारों ओर होता है और उसमें एक धारा होती है, उसमें प्रकाश भी होता है। सभी भावनाएँ प्राण में ही उठती हैं। प्राणमय शरीर हमारे भौतिक शरीर से स्नायुओं द्वारा जुड़ा होता है, प्राणिक स्नायु और भौतिक स्नायु आपस में एक-दूसरे के साथ जुड़े होते हैं। और प्राणिक स्नायु ही संवेदन पाते हैं, भौतिक स्नायु तो केवल साधन होते हैं। प्राणमय शरीर में हम प्राणमय जगत् के साथ जुड़े रहते हैं। अगर हम ध्यान में अपने प्राणमय शरीर में खिंच आयें तो हमारा सम्पर्क प्राणमय सत्ताओं से हो सकता है। वहाँ हम मित्र भी बना सकते हैं और भौतिक जगत् पर प्रभाव भी डाल सकते हैं।

तब हम मानसिक जगत् में खिंच सकते हैं (मानसिक जगत् का रंग पीला होता है और प्राणिक जगत् का लाल या जामुनी) मानसिक जगत् में मानसिक सत्ताएँ होती हैं और साथ ही विरोधी शक्तियाँ भी जिन्हें हम

असुर कहते हैं, जो ग़लत विचार देते हैं, ग़लत भाव देते हैं। मनोमय लोक में हम अच्छी और बुरी दोनों ही सत्ताएँ देखते हैं इसलिए हमें यह जानना चाहिये कि मनोमय लोक में कैसे जायें और वहाँ से कैसे लौटें और वहाँ क्या करें। यह बहुत आसान है।

तो हम भौतिक चेतना में रहते हुए जिस इच्छा-शक्ति का प्रयोग करते हैं उसी का अगर उच्चतर चेतना में रहते हुए करें तो वह कहीं ज़्यादा प्रभावशाली हो सकती है। मान लो कि तुम्हारे सामने कोई समस्या है। कुछ लोग बहुत क्रुद्ध होते रहते हैं, कुछ लोगों की कोई और समस्या होती है, शारीरिक समस्याएँ भी हो सकती हैं। अगर हम ज़्यादा ऊँचे स्तर तक पहुँच सकें और वहाँ से अपनी इच्छा-शक्ति लगाएँ तो परिणाम बहुत जल्दी, बल्कि तुरन्त भी आ सकता है। गुरु इसी भाँति सहायता करते हैं, वे उच्च स्तर से शिष्य के लिए इच्छा-शक्ति लगाते हैं, अपनी और शिष्य की चेतना के बीच एक नाता जोड़ देते हैं।

तो मनोमय जगत् में तुम मानसिक सत्ताओं को देख सकते हो, तब तुम अन्य लोकों में जा सकते हो, जैसे उच्चतर मन या उसके परे या फिर अधिमानस में जो देवों का निवास है। यह आकाश जैसा नीला होता है। तुम वहाँ पर शिव, विष्णु आदि को भी देख सकते हो। उसके बाद आता है अतिमानसिक जगत् जो भगवान् का लोक है। तो तुम्हारे लिए वास्तव में हर लोक में जाना सम्भव होता है। वह आन्तरिक लोक जिससे तुमको मार्ग-दर्शन मिल सकता है वह है चैत्य लोक और वह भगवान् का अंश है, उसका रंग गुलाबी होता है।

हाँ, तो शताब्दियों से लोग ध्यान करते आये हैं और उन्होंने वही रंग और रूप देखे हैं। जब श्रीअरविन्द चन्दननगर में रहते थे तो उन्होंने कुछ देवियों को ध्यान में देखा जिन्हें बाद में पॉण्डिचेरी में पहचाना कि वे इला, भारती, मही और सरस्वती थीं जो अन्तर्भास, अन्तर्भासिक शक्ति और अन्तःप्रेरणा की वैदिक देवियाँ हैं। ऐसी दो-एक नहीं बहुत सारी घटनाएँ हैं। मैं तुम लोगों को आन्तरिक जगत् का एक और उदाहरण देता हूँ—एक दिन माताजी ने हम लोगों को बतलाया था कि जब वे फ़्रांस में थीं तो बहुत-से देवी-देवताओं को देखा करती थीं, परन्तु उन्होंने गणेश को कभी न देखा था। उन्हें आश्चर्य हुआ करता था कि गणेश की इतनी बड़ी सूँड़ कैसे हो

सकती है, यह कहीं शुद्ध कल्पना ही तो नहीं है। एक दिन वे समाधि में थीं तो उन्होंने देखा कि एक लाल-सुनहरा आकार, जिसकी एक बड़ी-सी सूँड़ है, आकाश में तैर रहा है। माताजी ने पूछा, "तुम कौन हो?" उसने कहा, "मैं गणेश हूँ।" माताजी ऐसी चीज़ें कर सकती हैं। हम भी कर सकते हैं, लेकिन मुश्किल यह है कि हम कोशिश नहीं करते। जैसे-जैसे तुम उच्च से उच्चतर लोकों में जाते हो, तुम हर लोक में सम्पर्क पैदा करते हो और अपने जीवन में उनका उपयोग करते हो, बाह्य जीवन केवल उसी को प्रकट करता है जो तुम्हारे आन्तरिक जीवन में है इसीलिए आन्तरिक यात्रा ध्यान का बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। तुम्हें अन्तर्मुख होना सीखना चाहिये। जैसे ही तुम अन्तर्मुख होते हो, तुम उच्चतर लोकों में चले जाते हो, और उच्चतर लोक नीचे उतरते हैं और हमेशा तुम्हारे जीवन को सुधारते हैं।

तुम जितनी अधिक अभीप्सा करोगे उतना ही अधिक अवतरण होगा; लेकिन वह पूर्ण अवतरण न होगा। कभी-कभी पूर्ण अवतरण किसी-किसी को पागल बना देता है क्योंकि वे उसे आत्मसात् नहीं कर पाते। उसे उतना ही उतरने देना चाहिये जितना सम्भव हो। जब तक तुम शक्ति को ग्रहण करने के लिए तैयार न हो तब तक उसे खींचने या नीचे लाने की कोशिश न करो।

अगर तुम यह जानना चाहो कि आन्तरिक यात्रा कैसे की जाये तो जैसा मैंने कहा, किसी सुखद आसन में बैठ जाओ। मेरा ख़याल है कि वह आसन सबसे अच्छा रहता है जिसमें तुम्हारा शरीर सन्तुलित हो, और दोनों हाथ घुटनों पर टिके हों। फिर अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग करो। हमेशा ध्यान शुरू करने से पहले अपना ध्यान भगवान् को समर्पित कर दो और उनसे प्रार्थना करो, "मुझे आज सिखलाइये।" और हमेशा ध्यान से पहले यह निश्चय करो कि तुम किस उद्देश्य से और किस पर ध्यान करना चाहते हो। फिर तुम यह **संकल्प** करो कि तुम्हारी चेतना पैरों से उठ कर हृदय तक आ रही है, यह संकल्प करो कि तुम्हारी चेतना सिर से उठ कर हृदय तक आ रही है और फिर संकल्प करो, सचमुच संकल्प करो कि तुम्हारी चेतना दोनों हाथों से उठ कर हृदय में आ रही है। यह हो सकता है क्योंकि संकल्प आन्तरिक स्तर पर कार्य करता है। यह बहुत मज़ेदार है। शायद तुम अपने शरीर को, यहाँ तक कि उँगली तक को

हिलाने में समर्थ न होओगे, चेतना पीछे की ओर हट गयी है। तुम उसके लौटने पर ही हिलने-लायक होओगे। अपने-आपको गति-शून्य बना कर अपने अन्दर की ओर मुड़ो, जिसे अन्तर्मुखी होना कहते हैं। अन्दर की ओर मुड़ो मानों अपने अन्दर झाँक रहे हो या फिर ऊपर की ओर जाओ। फिर अपनी चेतना को इकट्ठा करके यह संकल्प करो कि तुम अगले स्तर पर जाना चाहते हो। इस तरह तुम सात नहीं चौदह, बल्कि इक्कीस स्तरों में जा सकते हो—यदि तुम बीच के स्तरों की भी ग़िनती कर लो। फिर अपने-आपको पीछे खींच लो (यह केवल अभ्यास की बात है) और निश्चल-स्थिर रहो। अवलोकन करो पर अर्थ लगाने की कोशिश न करो। जैसे ही तुम अर्थ लगाने की कोशिश करते हो वैसे ही सब कुछ गुड़-गोबर हो जाता है क्योंकि तुम्हारा मन सक्रिय हो जाता है। कुछ समय के बाद तुम अपनी चेतना को आराम या यूँ कहें नींद में भेज देते हो—बिलकुल एकदम निष्कम्प। और इसके बाद फिर से तुम अपने-आपको अगले क्षेत्र में खींच लेते हो। लेकिन अपनी पिछली चेतना को निष्क्रिय बनाना न भूलो। इस तरह तुम सभी चौदह बल्कि इक्कीस क्षेत्रों में जा सकते हो।

हर क्षेत्र का अपना रंग-रूप होता है, समय का अपना ही ख़याल होता है जो औरों से भिन्न होता है। तुम ब्रह्मा के बारे में जानते ही हो। अभी ब्रह्मा का केवल एक दिन और एक रात होती है तो इतने में सृष्टि में प्रलय आ जाता है। यह ग़लत नहीं है और न ही कल्पना है। उस स्तर पर एक दिन और एक रात ही **होती** है और इधर सारी सृष्टि समाप्त हो जाती है, जिसे प्रलय कहा जाता है। इस तरह हर लोक में अलग तरह की ग़िनती होती है।
(क्रमशः)

—नवजातजी

श्रीमाँ प्रत्येक का पथ-प्रदर्शन और प्रत्येक की सहायता उसकी प्रकृति और उसकी आवश्यकता के अनुसार करती हैं, और जहाँ कहीं आवश्यक हो, वे स्वयं अपनी 'शक्ति' के साथ हस्तक्षेप करती हैं ताकि साधक पथ की माँगों और चुनौतियों को सहने के योग्य बन सके। वे प्रत्येक अभीप्सारत अन्तरात्मा के लिए, जो उनकी मदद के लिए उनकी ओर ताकती है, अपने सम्पूर्ण प्रेम, शान्ति, ज्ञान तथा चेतना के साथ उपस्थित रहती हैं।

श्रीअरविन्द

श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार

(इस पत्रमाला में हम माताजी के साथ जिन आश्रमवासी का पत्र-व्यवहार दे रहे हैं उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी से शिक्षा समाप्त करके श्रीअरविन्द के बड़े गुरुकुल में सन् १९३८ में २१ वर्ष की अवस्था में प्रवेश पाया था। २००१ में अपनी मृत्युपर्यन्त वे यहीं के अन्तेवासी रहे।

इन आश्रमवासी ने जो अपने-आपको कार्यकर्ता कहना पसन्द करते थे, आश्रम में सब प्रकार के पापड़ बेले थे; पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर सब तरह के काम किये, अतः उनके पत्र-व्यवहार में रसोई-घर से लेकर प्रशासन और पठन-पाठन आदि अनेक विषयों की बातें आ जाती हैं। इसमें माताजी के अनेक रूपों का परिचय मिलता है, जहाँ उच्चतर और गुह्य जीवन की बातें हैं वहीं नौकरों के साथ व्यवहार, खाना पकाने, तेल, इमली के व्यवहार आदि के बारे में भी प्रामाणिक मार्गदर्शन मिलता है। आशा है पाठकों को अपने-अपने रस की चीज़, अपने-अपने क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन मिल सकेगा।

ये आश्रमवासी आश्रम से निकलने वाली दो हिन्दी मासिक पत्रिकाओं 'पुरोधा' तथा 'अग्निशिखा' के सम्पादक थे, आश्रम के शिक्षा-केन्द्र में हिन्दी के अध्यापक थे और इन्होंने श्रीअरविन्द तथा माताजी की कई कृतियों का हिन्दी में अनुवाद भी किया।

यह पत्रमाला पहले पुस्तक-रूप में हिन्दी में छपी थी। लेखक ने इसके शुरू में श्रीअरविन्द की कुछ चिट्ठियाँ भी जोड़ दी हैं और माताजी को लिखी गयीं अपनी चिट्ठियों के अनुवाद में कहीं-कहीं अपनी बात को ज़्यादा स्पष्ट करने के लिए कुछ विस्तार भी कर दिया है, परन्तु माताजी की चीज़ें ईमानदारी के साथ जैसी-की-वैसी रखी गयी हैं।)

श्रीअरविन्द आश्रम में आने पर भिन्न-भिन्न लोगों की अलग-अलग तरह की प्रतिक्रिया होती है। कइयों की अचानक अन्दर की आँखें खुल जाती हैं और वे अपना सब कुछ माताजी को अर्पित कर देना चाहते हैं। यहाँ कुछ इसी तरह की प्रतिक्रिया हुई थी और इस पत्र-लेखक ने माताजी को लिखा, "मैं अपना सब कुछ अर्पित कर देना चाहता हूँ, मेरे पास कुछ कपड़े हैं और कुछ पुस्तकें। बतलाइये मैं

इनका क्या करूँ?"

जब तुमने अपने मन से समर्पण कर दिया है और यह मानते हो कि जो कुछ तुम्हारे पास है वह माताजी का है और उन्हीं को अर्पित है तो इस बाहरी क्रिया की ज़रूरत नहीं। अगर तुम्हें यह ज़रूरी लगता है तो तुम ये चीज़ें 'क' को दे दो और माताजी तुम्हें ये चीज़ें तुम्हारे उपयोग के लिए लौटा देंगी।

२ सितम्बर १९३८ —श्रीअरविन्द

माताजी, ऐसा लगता है कि कल का प्रणाम मेरे लिए बहुत बड़ा आशीर्वाद था। मैं सारे दिन ऐसी अवस्था में रहा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुख और आनन्द इसके मुख्य भाग थे। ज़रा-सा भारीपन—नहीं, कोई भी शब्द मेरे भाव को स्पष्ट नहीं कर पाता, एक प्रकार के भारीपन और निराशा का भी मिश्रण था। शायद मेरी मरती हुई महत्त्वाकांक्षाएँ इसका कारण थीं।

यह प्राण के प्रतिरोध के कारण था जिसे लगता है कि प्रकाश के दबाव के कारण उसे अपनी कामनाएँ छोड़नी पड़ेंगी।

—श्रीअरविन्द

ध्यान में मुझे ऐसा लगा कि सिर से पाँव तक मेरा सारा शरीर बहुत उज्ज्वल प्रकाश में बदल गया है। पहले मैं श्रीअरविन्द की पुस्तक 'छह कविताएँ' नहीं समझ पाता था, लेकिन इसके बाद मैं उसे समझ पाया...

चेतना की ठोस ज्योति पैदा करने वाला प्रकाश का आरोहण, हमेशा साधना के निर्णायक अनुभवों में से एक होता है।

२६ सितम्बर १९३८ —श्रीअरविन्द

माताजी, मैंने पिछले पत्र में अपने प्रकाश के अनुभव की बात कही थी, उसके बाद से मैं हमेशा सिर पर या हृदय में सारे समय प्रकाश देखता रहा हूँ। कभी-कभी मेरे सिर पर बहुत उज्ज्वल प्रकाश

दिखलायी देता है, कभी सिर पर या सारे शरीर में अग्नि दिखायी देती है, लेकिन आग गरम नहीं होती, देखने में अच्छी लगती है।

डॉक्टरों का कहना है कि निरन्तर प्रकाश आँखों के लिए अच्छा नहीं होता, मेरा ख़याल है कि यह प्रकाश बिलकुल हानिकर नहीं होता। है न?

यह प्रकाश भौतिक नहीं है, यह आँखों को नुकसान नहीं पहुँचाता।

२८ सितम्बर १९३८ —श्रीअरविन्द

आश्रम के एक आदमी का दिमाग़ कुछ चल गया था। उसे बाहर जाने की सलाह दी गयी। वह आश्रम से गुरुकुल काँगड़ी चला गया और वहाँ बिलकुल स्वस्थ रहा। कुछ समय के बाद वह लौट आया। उसे आश्रम में प्रवेश करने की स्वीकृति नहीं मिली। वह पत्र-लेखक का परिचित था। उसने माताजी से पूछा कि अगर वह मुझसे मिलने आये तो मुझे क्या वृत्ति अपनानी चाहिये, मैं उसे पॉण्डिचेरी में रहने की सलाह दूँ या यहाँ से चले जाने के लिए कहूँ।

वह न केवल हमारी स्वीकृति के बिना, बल्कि बार-बार हमारे मना करने पर आया है। उसे न तो आश्रम में प्रवेश की स्वीकृति दी जा सकती है न पॉण्डिचेरी में रहने की सलाह। यह उसके लिए अच्छा नहीं है, उसका मानसिक रोग बढ़ जायेगा और स्वयं उसके लिए तथा औरों के लिए बेहद तकलीफ़ का कारण होगा, तीव्र साधना या एकान्तवास के बिना, काम और अध्ययन करते हुए सामान्य जीवन बिताना ही उसके लिए हितकर है, उसके ठीक रहने के लिए यही एक रास्ता है।

अगर तुम उससे मिलो तो कहना कि वह चला जाये। अगर उसे लौट कर गुरुकुल चले जाने और वहीं सामान्य जीवन बिताने के लिए मनाया जा सके तो यह उसके लिए सबसे अच्छी बात होगी।

२३ अक्तूबर १९३८ —श्रीअरविन्द

पत्र-लेखक आयुर्वेद का स्नातक था। माताजी ने उसे चिकित्सा के सिवाय और बहुत प्रकार के काम दिये। उसके एक हितैषी ने सलाह

दी, "तुम माताजी से पूछ कर एक छोटा-सा औषधालय खोल लो, तुम्हारी विद्या भी काम आयेगी और दूसरों का भी उपकार होगा।" उसे बात जँच गयी और उसने इस विषय का एक पत्र माताजी को लिख दिया। जवाब में श्रीअरविन्द का यह पत्र आया। मज़ेदार बात यह है कि उस पत्र का उत्तर केवल हाँ या ना में हो सकता था पर इतना विस्तृत उत्तर पाकर वह ख़ुशी से नाच उठा... उसकी बहुत इच्छा थी कि श्रीअरविन्द का एक लम्बा पत्र मिले।

तुमने जो प्रस्ताव रखा है, उसका सवाल ही नहीं उठता और यह आश्चर्य की बात है कि 'क' इस बात को भूल गया है। यहाँ फ़्रेंच-भारत में किसी फ़्रेंच डॉक्टर के सिवा और कोई चिकित्सा का काम नहीं कर सकता इसी कारण 'ग' जो होम्योपैथी में प्रवीण है, पॉण्डिचेरी वालों का इलाज नहीं कर सकता जब तक कि उसे फ़्रेंच डॉक्टर ही न बुलायें। और कहा जाता है कि यह भी पूरी तरह क़ानूनी नहीं है। वह केवल बाहर से आने वालों, जैसे हैदराबादवालों की और आश्रमवालों की चिकित्सा कर सकता है, हम केवल आश्रमवासियों के लिए औषधालय रख सकते हैं क्योंकि हम ख़ानगी तौर पर आश्रमवालों का ही इलाज करते हैं और पॉण्डिचेरी के डॉक्टरों से प्रतियोगिता नहीं करते, यहाँ के चिकित्सा-विभाग के साथ हमारा अच्छा सम्बन्ध है क्योंकि वे अपने हस्पताल में हमारे दो डॉक्टरों की सहायता लेते हैं। अगर वे चाहें तो हमारे औषधालय और साधकों की चिकित्सा को भी क़ानून के विरुद्ध बता कर बन्द कर सकते हैं।

हो सकता है कि पॉण्डिचेरी में कुछ लोग आयुर्वेद की चिकित्सा करते हों, पर है यह क़ानून के विरुद्ध, और आश्रम यह नहीं कर सकता।

और फिर इस प्रकार का लोकोपकार का काम हमारे आश्रम के क्षेत्र से बाहर है। यहाँ रामकृष्णाश्रम की तरह नहीं है, हम सार्वजनिक कार्यों से बचते हैं और अपने-आपको केवल आश्रम के आध्यात्मिक कार्य तक ही सीमित रखते हैं। कुछ और करने का मतलब होगा व्यष्टिगत और सामुदायिक आध्यात्मिक चेतना और जीवन के निर्माण के कार्य पर एकाग्र होने की जगह सामान्य स्तर पर अपनी शक्ति को बिखेरना।

२७ अक्तूबर १९३८ —श्रीअरविन्द

माताजी,

मेरे नींद के घण्टे अभी तक निश्चेतन होते हैं, मुझे उनके बारे में कुछ नहीं पता होता। क्या यह तमस् के कारण है?

नहीं, सामान्य नींद हमेशा निश्चेतन होती है और अवचेतन निद्रा की अवस्था में चेतना लाने में समय लगता है।

२९ अक्तूबर १९३८ —श्रीअरविन्द

माँ मेरी,

कभी-कभी मैं विभिन्न लोगों की कृतियों का अनुवाद करता हूँ... चाहे वे आश्रम के हों या बाहरी जगत् के। मैं इन्हें प्रेस में छापने के लिए भेज सकता हूँ क्या? इन दिनों हर एक अनुवाद देख कर आपके लिए अनुमति देना सुविधाजनक न होगा। क्या इस तरह का साहित्यिक कार्य मेरी साधना में सहायता देगा या यह बाधक है?

तुम कभी-कभी अनुवाद का यह काम कर सकते हो, लेकिन इस हद तक नहीं कि तुम उसी में डूब जाओ। तुम्हारी चेतना साधना के लिए मुक्त रहनी चाहिये।

प्रेम और आशीर्वाद।

२९ दिसम्बर १९३८

किसी की मृत्यु हो गयी। प. ले. की इच्छा थी कि उसकी सम्पत्ति माताजी के पास आ जाये। माताजी से पूछने पर उत्तर मिला:

तुम्हारे पत्र के उत्तर में मैं यही कह सकती हूँ कि अगर उस सम्पत्ति का मूल्य मुझे भेंट किया जाये तो निश्चय ही मैं उसे स्वीकार कर सकती हूँ, लेकिन मैं उसके लिए माँग नहीं कर सकती। मैं उसे बिना शर्त की भेंट के रूप में ही ले सकती हूँ।

मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

२० जनवरी १९३९ **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १७, पृ.२९१-९५

बिखरे मनके

कहते हैं कि रूस देश की महारानी कैथरीन द्वितीया ने एक दिन अपने नौकर को बुलाने के लिए घण्टी बजायी, वह न आया, दुबारा घण्टी बजी। नौकर महाशय तब भी नहीं आये।

आख़िर वे उठीं, अपने कमरे से निकल कर उस तरफ़ गयीं जहाँ नौकर-चाकर रहा करते थे। वहाँ उन्होंने उसे ताश खेलते हुए पाया। वह कोई अचूक चाल चलने के लिए गहरी सोच में डूबा हुआ था। महारानी के आने की भनक वहाँ बैठे किसी भी व्यक्ति को न मिली। ऐसे लौलीन थे वे सब ताश के खेल में।

महारानी भी चुपके से उसके पीछे जाकर खड़ी हो गयीं। ताश के पत्तों पर एक नज़र डाल, एक पत्ता निकाल कर चलते हुए बोलीं—"लो तुम्हारी यह चाल चल कर मैंने तुम्हें जिता दिया, अब आकर तुम मेरा काम करो।"

*

तूरीन नामक मार्शल का एक बड़ा हट्टा-कट्टा अर्दली था। अर्दली का एक दुबला-पतला दोस्त था स्टीफ़न, वह भी मार्शल के घर पर ही नौकर था।

एक दिन मार्शल तूरीन खिड़की से झुक कर बाहर देख रहे थे कि अर्दली कमरे में आया और उनकी पीठ पर ज़ोर से घूँसा जमा बैठा। तूरीन ग़ुस्से से पीछे मुड़े। जब अर्दली ने उन्हें देखा तो उसके तो होशो हवास गुम हो गये। मालिक के क़दमों पर गिर पड़ा, हाथ जोड़ कर माफ़ी माँगते हुए बोला—"सर, सौ-सौ बार माफ़ी चाहता हूँ, रात के अँधेरे में मुझे लगा कि स्टीफ़न खड़ा है, मुझे नहीं पता था कि आप...

अर्दली को वाक्य पूरा न करने दिया तूरीन ने, उसे ज़मीन से उठा कर अपनी बाँहों में भरते हुए मुस्कुरा कर बोल उठे—"अरे भाई, अगर स्टीफ़न भी होता, तो भी इतनी ज़ोर से तो नहीं मारना चाहिये था। यह घूँसा उसकी पीठ पर पड़ा होता तो उस बेचारे की क्या हालत हुई होती भला!"

अर्दली तो शर्म से पानी-पानी हुए जा रहा था। उसे लगा कि धरती फट कर उसे अपने अन्दर समा क्यों नहीं लेती। उसकी यह हालत देख मार्शल ने उसके कन्धे को दबा कर ठोड़ी ऊपर उठाते हुए कहा—"अरे भाई, अब

मेरी पीठ भी तो सहलाओ ज़रा, कैसी झनझना रही है!!"

*

रेल कम्पनियों के शहंशाह एडवर्ड हैरिमन एक दिन अचानक अपने एक कर्मचारी के दफ़्तर में चले गये। कर्मचारी कुर्सी पर अधलेटी हालत में बैठा मेज़ पर पैर फैलाये आराम कर रहा था। हैरिमन को देखते ही वह सकपका कर तुरन्त सावधान की मुद्रा में मुँह झुकाये खड़ा हो गया। शरीर उसका डर के मारे पत्ते की तरह काँप रहा था, मुँह पर हवाइयाँ उड़ी हुई थीं।

हैरिमन ने उसके लटके मुँह को ऊपर उठाते हुए प्रसन्नता के साथ कहा —"दोस्त, मुझे यह देख कर बड़ी ख़ुशी हुई कि तुम कभी-कभार आराम से बैठ कर सोचते भी हो।"

*

प्रसिद्ध लेखक किप्लिंग ने किसी पहाड़ी पर एक घर ख़रीदा और अपनी पत्नी के साथ गर्मियों के मौसम में उसमें रहने के लिए चले गये।

एक दिन पति-पत्नी पहाड़ की ढलान पर सैर करते हुए एक छोटी-सी झोंपड़ी के पास जाकर रुके जिसमें एक बूढ़ी स्त्री अकेली रहती थी।

वृद्धा उन्हें देख कर बहुत ही ख़ुश हुई बोली—"वह मकान आपका ही है न जिसकी खिड़कियाँ इस तरफ़ खुलती हैं?"

"जी", किप्लिंग ने जवाब दिया।

"रात को उसमें रौशनी दिखलायी देती है तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। यहाँ चारों तरफ़ के सन्नाटे में वह प्रकाश बहुत सुखद लगता है। जीवन धड़क रहा है इसकी ख़ुशख़बरी सुनाता है। तुम लोग कुछ दिन और यहाँ रहोगे और उन खिड़कियोंवाले कमरे में बत्तियाँ जलाया करोगे न?" वृद्धा की ख़ुशी आँखों में छा गयी थी।

"जी हाँ, हम कुछ दिन तो यहाँ ज़रूर ठहरेंगे, हो सकता है ज़्यादा भी रुक जायें, और उस कमरे में हर रोज़ बत्तियाँ भी ज़रूर जलाया करेंगे।" किप्लिंग ने नम्रता के साथ हाथ जोड़ कर कहा।

पति-पत्नी को आसीस देते हुए विदा किया वृद्धा ने।

कुछ दिनों के बाद सर्दियों में जब वे दोनों वहाँ से लौटने लगे तो किप्लिंग ने घर की निगरानी करने वाले नौकर को ख़ास हिदायत दी कि उस कमरे की बत्तियाँ रोज़ देर रात तक जलती रहने दे और साथ ही उस कमरे के परदे भी उतार दे ताकि उस अकेली वृद्धा स्त्री को ज़्यादा रौशनी के साथ-साथ दूर से धड़कता हुआ जीवन भी दिखायी दे।

*

जर्मनी की सेना के एक अधिकारी लड़ाई के समय शिविर से कुछ सैनिकों के साथ घोड़ों के लिए घास एकत्र करने निकले। एक गाँव के किसान को उन्होंने आदेश दिया—"चल कर बतलाओ कि इस गाँव में किस खेत की फसल सबसे अच्छी है।" विवश होकर किसान को उन सैनिकों के साथ जाना पड़ा। खेत खड़ी फसल से लहलहा रहे थे। बहुत उत्तम फसल थी। सैनिक चाहते थे कि उन लहलहाते खेतों की फसल काट लें, लेकिन किसान कहता चला जा रहा था—"जी, यहाँ नहीं, कुछ और आगे चलिये, इससे भी अच्छी फसल आपको दिखलाऊँगा।"

धीरे-धीरे किसान सैनिकों को गाँव की सीमा के खेत तक ले गया। वहाँ का खेत दिखला कर बोला—"महाशय, इस गाँव में इस खेत की फसल सबसे अच्छी है।"

सैनिकों ने उस खेत की पूरी फसल उखाड़ कर, गट्ठे बाँध, घोड़ों पर लाद दी। सैनिक अधिकारी ने वह फसल देख, डपट कर किसान से कहा —"बेकार में तू हमें इतनी दूर ले आया, इससे अच्छी-अच्छी कितनी फसलें तो हम पीछे छोड़ आये और तू इसे उत्तम बता कर हमें बेवकूफ़ बना रहा है। बता, इस चाल के पीछे तेरी मंशा क्या है?"

किसान ने हाथ जोड़ कर, विनीत लेकिन स्पष्ट स्वर में कहा—"जी, सच बात तो यह है कि मैं जानता था कि आप खेत के मालिक की फसल का मूल्य तो देंगे नहीं। मैं किसी दूसरे का खेत दिखला कर उस बेचारे की हानि कैसे करवाता। पहली बात तो यह है कि यह मेरा खेत है और दूसरी यह कि आप भी मानेंगे कि मेरे लिए तो अपने खेत की फसल ही सबसे अच्छी है।"

किसान की बात सुन कर वह जर्मन सैनिक अधिकारी लज्जित हो

उठा, साथ ही किसान के प्रति उसका मनोभाव तुरन्त बदल गया। घोड़े से उतर कर उसने अपनी जेब से एक थैली निकाली, किसान के हाथों में थमाता हुआ बोला—"आज अचानक सज्जनता का यह पाठ पढ़ा कर तुमने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया भाई, युद्ध के इस नारकीय दलदल में फँसे हुए मुझको हाथ देकर उबारने की क़ीमत तो नहीं चुका पाऊँगा, लेकिन तुम्हारी फसल की भरपाई के लिए मेरी इस छोटी-सी भेंट को कहीं अस्वीकार न कर देना...।"

किसान ने नम्रतापूर्वक उस थैली को स्वीकार कर, उसे अपने सिर-आँखों पर लगा लिया।

'पुरोधा', जनवरी २००६ से —वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

Date of Publication: 1st August 2020
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

A school by **The Vatika Group** vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2019-20

ICSE Curriculum

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363